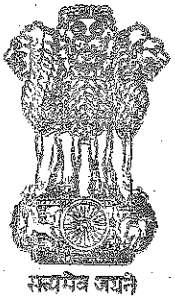

142

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

ऐसे अपराधियों को, जो बिना किसी
सौदेबाजी स्वतः दोष स्वीकार करते हैं,
रियायत प्रदान करना

विषय पर

एक सौ बयालीसवां रिपोर्ट

1991

अध्याय 1

भूमिका

1.1. **उद्देश्य**---दांडिक विचारणों और अपीलों के निष्पादन में असम्यक् विलम्ब के कारण उत्पन्न समस्या की ओर आयोग ने ध्यान दिया है । यह ध्यान विचाराधीन कैदियों की विस्फोटक संख्या के कारण भी गया है जो अनेकों वर्षों से जेलों में सड़ रहे हैं । तदनुसार, आयोग ने यह महसूस किया कि दांडिक विचारणों और अपीलों के निष्पादन में विलंब को कम करने के लिए कुछ औपचारात्मक विधिक उपाय किए जाने चाहिए और विचारण प्रारंभ होने की प्रतीक्षा करने वाले विचाराधीन कैदियों के, जो जेलों में हैं, कष्ट को कम करने के लिए ऐसे उपाय वांछित हैं। अतः आयोग ने, स्वतः, इस विषय को उठाया और इस विषय पर प्रस्ताव तैयार करने के लिए पर्याप्त समय दिया तथा विचार-विमर्श किया । वर्तमान रिपोर्ट, जिसमें उन व्यक्तियों को, जो बिना किसी सौदेबाजी के दोष स्वीकार करते हैं, कानून के अंतर्गत पर्याप्त रक्षोपायों का सुझाव देकर उन्हें रियायतें देने के सिद्धांत को आरंभ करने की सिफारिश की गई है और यह आयोग की ओर से उठाए गए बीड़े का परिणाम है ।

1.2. **अमरीका के न्यायालयों का अनुभव**---इस संदर्भ में, "अभिवाक-सौदे" की प्रणाली की ओर ध्यान आकर्षित हुआ है जो कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका के अनेक राज्यों में स्वीकार की गई है तथा सफल सिद्ध हुई हैं । कनाडा में भी इस प्रणाली को, एक विशेष विधि द्वारा, प्रारम्भ करने के बारे में गंभीरतापूर्वक कदम उठाए जा चुके हैं । कनाडा का विधि आयोग, जो कि पहले इसके विरुद्ध था, अब इस मत का प्रतीत होता है कि इसे, पर्याप्त रक्षोपायों के साथ, प्रारंभ करना वांछनीय है ।

1.3.1. **एक नए माडल की रचना**---आयोग की ओर से एक सर्वथा नए माडल को लेकर एक प्रणाली तैयार करने का प्रयास किया गया है जो उन व्यक्तियों के भय और आशंका को दूर करेगी जो उपरोक्त सिद्धांत को नापसन्द करते हैं और इस पृष्ठभूमि में, काफी हद तक, कमियों को दूर करती है ।

1.3.2. इतना ही नहीं, तैयार किए गए माडल में (1) अपराधियों को परिवीक्षा पर निर्मुक्त करने, और (2) अपराधों का परिशमन करने से संबंधित उपबंधों को ध्यान में रखने की अपेक्षा की गई है । इन पक्षों पर अन्यत्र प्रचलित, "अभिवाक-सौदे" की प्रणाली में ध्यान नहीं दिया गया था । इस माडल स्कीम को तैयार करने में इस पक्ष पर भी ध्यान दिया गया है ।

1.4. आशा की जाती है कि इस रिपोर्ट में प्रस्तावित स्कीम, अधिकांशत सभी आपत्तियों का समाधान कर देगी और इस दिशा में किए गए कार्य के प्रयोजन को पूरा करेगी ।

अध्याय 2

दांडिक मामलों में विलंब की समस्या का विस्तार

2.1. **दांडिक विचारणों और अपीलों के निष्पादन में विलंब**---जनसाधारण में यह शिकायत है कि मजिस्ट्रेटों और जिला तथा सेशन न्यायाधीशों के न्यायालयों में दांडिक विचारणों में अत्यधिक समय लगता है। यह कहा जाता है कि दांडिक विचारण अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में भेजने के पश्चात् तीन-चार वर्ष की अवधि तक आरंभ नहीं होता है। इस दौरान अभियुक्त जेलों में सड़ते रहते हैं। यह व्यपदेश भी किया गया है कि जेलों में जो स्थिति है वह दयनीय है और अभियुक्त को अमानवीय दशाओं में घोर अपराधियों के साथ मिलकर रहने के लिए बाध्य किया जाता है। यह कहा जाता है कि अनेक मामलों में अभियुक्त द्वारा विचारण आरंभ होने से पूर्व व्यतीत किया गया समय उस अधिकतम दंड से भी अधिक हो जाता है जो आरोपित अपराध का दोषसिद्ध पाए जाने पर उन्हें दिया जा सकता है।

2.2. विचारण न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील आमतौर पर विशेष रूप से सेशन मामलों में की जाती है। अनुभव से यह सामने आया है कि उच्च न्यायालयों में (अपवादों को छोड़कर) दांडिक अपील के विनिश्चित किए जाने में कम से कम पांच से आठ वर्ष तक का समय लगता है। इलाहाबाद और बम्बई जैसे उच्च न्यायालयों में अपीलों के निष्पादन की प्रतीक्षा का समय दस वर्ष तक का भी है, जैसा आयोग को ज्ञात हुआ है। यदि किसी मामले को और आगे उच्चतम न्यायालय में अपील कर लाया जाता है तो, उच्चतम न्यायालय द्वारा उस विषय में निर्णय देने में दस वर्ष का और समय लग जाता है। आयोग को ज्ञात हुआ है कि इस समय उच्चतम न्यायालय 1979 से संबंधित दांडिक न्यायालयों का निपटारा कर रहा है। दांडिक विषयों के निष्पादन में न्यायालयों में होने वाला यह अत्यधिक विलंब विस्फोटक स्थिति तक पहुंच चुका है जिसकी ओर शीघ्र ही ध्यान दिया जाना चाहिए।

2.3. **उच्चतम न्यायालय द्वारा इस विषय की ओर दिया गया ध्यान**---इससे ठीक पहले के पैराओं में वर्णित तथ्यों की ओर उच्चतम न्यायालय का ध्यान अनेक मामलों में गया है और उनमें से सबसे महत्वपूर्ण मामला हुसैनआरा खातून बनाम **बिहार राज्य**[1] है, जो कि बिहार राज्य में प्रारंभ हुआ एक मामला था। उच्चतम न्यायालय ने इस संबंध में अनेक आदेश दिए जिनका प्रारंभ ए आई आर 1979 उ. न्या. 1360 से हुआ।

2.4. **उच्चतम न्यायालय का ध्यान इस ओर आकर्षित किया** गया था कि एक बहुत बड़ी संख्या में पुरुष और स्त्रियां, जिनमें बालक भी सम्मिलित थे, अनेक वर्षों से न्यायालयों द्वारा विचार किए जाने के लिए प्रतीक्षा-रत थे। उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया[2] कि,

> **"वे अपराध, जिनका आरोप उनमें से कुछ के विरुद्ध था, बहुत नगन्य थे और यदि वह साबित भी कर दिया जाता तो उनके लिए कुछ मास से अधिक, संभवतः एक या दो वर्ष, की सजा नहीं दी जा सकती थी, और फिर भी ये अभागे मानव और भूले हुए व्यक्ति, जिनकी स्वतंत्रता छिन चुकी थी, तीन से दस वर्ष तक की अवधि से जेल में थे और उनका विचारण तक आरंभ नहीं हुआ था।"**

2.5. उच्चतम न्यायालय का ध्यान इस ओर गया कि अनेक विचाराधीन कैदी पांच, सात या नौ वर्ष से जेल में थे और उनमें से कुछ तो, उनका विचारण आरंभ हुए बिना, दस वर्ष से अधिक से जेल में थे। उच्चतम न्यायालय ने दुःख प्रकट किया :

> **"इन भटकी हुई आत्माओं को उस न्यायिक प्रणाली में क्या विश्वास रहेगा जो इतने वर्षों से उनका विचारण तक नहीं कर सकी और उन्हें सीकचों के पीछे रखा हुआ है और वह भी इसलिए नहीं कि वे दोषी हैं बल्कि इसलिए कि वे इतने गरीब हैं कि जमानत कराने का व्यय नहीं उठा सकते और न्यायालयों के पास उनका विचारण करने का समय नहीं है। यह न्याय का मखौल है कि अनेक गरीब अपराधी, "तुच्छ भारतीय" छोटे-छोटे अपराधों के लिए कारागार की कोठरियों में बंद रहने पर मजबूर हैं क्योंकि जमानत की प्रक्रिया उनके तुच्छ साधनों के परे है तथा विचारण आरंभ नहीं किए जाते और यदि आरम्भ होते भी हैं तो कभी पूरे नहीं होते।"**

उच्चतम न्यायालय ने यह भी पाया[4] कि :

> "विधिक तथा न्यायिक प्रणाली की एक कमजोरी यह भी है कि, जो कि विचाराधीन कैदियों को न्याय न प्रदान करने के लिए सर्वथा उत्तरदायी है और वह है मामलों के निष्पादन में होने वाला कुख्यात विलम्ब। यह विधिक और न्यायिक प्रणाली पर एक दुःखपूर्ण आक्षेप है कि अपराधी का विचारण अनेक वर्षों तक आरंभ नहीं होता है। विचारण आरंभ होने में एक वर्ष का विलम्ब भी अनुचित है; तब उस स्थिति

> का क्या कहना जिसमें विलंब की अवधि तीन या पांच या सात या दस वर्ष तक की हो। शीघ्र विचारण दांडिक न्याय का सार है और इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि विचारण में विलंब अपने आप में न्याय से इंकार है।"

2.6. आयोग ने इस बात पर ध्यान दिया कि अनेक वर्ष बीत जाने पर भी इस स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है। विचारणों और अपीलों के निष्पादन में लम्बा विलंब चला आ रहा है। इस समय विद्यमान स्थिति में अधीनस्थ न्यायालयों में दांडिक विचारण की प्रक्रिया को और अपीली न्यायालयों में अपीलों के निष्पादन की प्रक्रिया को शीघ्र पूरा करना अत्यधिक कठिन है। प्रतिपरीक्षा के विस्तार और अवधि को अन्य समस्याओं को जन्म दिए बिना कम नहीं किया जा सकता। इसी कारण बहस को भी कम नहीं किया जा सकता। अतः, शीघ्र निष्पादन के उद्देश्य को पूरा करने के लिए इस प्रणाली में सुधार करने की बहुत कम गुंजाइश है। इसके अतिरिक्त, आयोग के पास यह विश्वास करने का भी कारण है कि न्यायालयों और न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने से विचारणों और अपीलों के विलम्ब को तथा विचाराधीन कैदियों द्वारा भोगी जा रही कठिनाई को कम या समाप्त नहीं किया जा सकता। उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई कठोर चेतावनी के बावजूद जमानत की प्रक्रिया अभी भी उतनी ही असंतोषजनक है जैसी कि पहली थी। ऐसी कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई है कि विचारण की प्रतीक्षा करने वाले जेलों में बंद विचाराधीन कैदियों द्वारा व्यतीत की जाने वाली अवधि में कोई सुधार हुआ हो। आयोग ने यह अनुभव किया है कि संभवतः यह स्थिति और अधिक बिगड़ी है तथा इस विषय में शीघ्र सुधार करने की आवश्यकता है।

2.7. **विचाराधीन कैदियों की बाबत सुसंगत आंकड़ों का उपलब्ध न होना**---यह दुर्भाग्य की बात है कि सुसंगत आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। विचारण आरंभ होने की प्रतीक्षा में जेलों में सड़ रहे विचाराधीन कैदियों की संख्या प्राप्त करने के लिए राज्य सरकारों से निवेदन करना होता है। राज्य सरकारें सामान्यतया ऐसी जानकारी एकत्रित करने और प्रस्तुत करने के प्रति उदासीन रहती हैं। बिहार राज्य, जो कि हुसैनआरा के मामले में[5] उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक पक्षकार था, उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से निर्देशित किए जाने के उपरान्त भी जानकारी देने में असफल रहा। अंततः उच्चतम न्यायालय को इस आधार पर अग्रसर होना पड़ा कि अपीलदारों द्वारा दाखिल किए गए शपथपत्रों में दी गई जानकारी और समाचार-पत्रों की रिपोर्टें सही थीं। क्योंकि बिहार राज्य ने इस स्थिति से इन्कार नहीं किया। महत्वपूर्ण आंकड़ों के अभाव के कारण आयोग का कुछ हद तक, इस विषय में छानबीन करने में अवरोध उत्पन्न हुआ। यह अनुभव करते हुए कि कोई लाभदायक परिणाम निकलने की आशा नहीं है राज्य सरकारों को इस विषय में जानकारी देने के लिए नहीं लिखा गया है। आयोग ने अपने अनुभव के आधार पर ही और समाजशास्त्रियों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा किए गए असंख्य व्यपदेशनों के आधार पर इस विषय में अग्रसर होने का निर्णय लिया। एक दृष्टि से तो आंकड़े अनावश्यक नहीं हैं क्योंकि प्रणाली और सिद्धांतों के बारे में कोई विवाद नहीं है और न हो सकता है।

2.8 देश के उच्च न्यायालयों को सुसंगत आंकड़े प्रस्तुत करने के लिए पत्र लिखे गए थे। उस अवधि के बारे में जिस अवधि तक दांडिक विचारण सैशन न्यायालयों और मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों में लंबित थे और निष्पादित किए गए मामलों की संख्या की बाबत भी जानकारी मांगी गई थी और यह अनुरोध किया गया था कि यह जानकारी निष्पादित मामलों को इस प्रकार वर्गीकृत करके दी जाए कि कितने मामलों का निष्पादन दोषसिद्धि में हुआ था और कितने मामलों का परिणाम निर्मुक्ति था। यह जानकारी समस्या के दो पक्षों की जांच करने के उद्देश्य से मांगी गई थी। एक तो वह अवधि जिस तक मामले अधीनस्थ न्यायालयों में विचारण के लिए लंबित थे और, दूसरी, विचारणों के परिणाम के पश्चात् अंतिम रूप से निर्मुक्तियों की प्रतिशतता। उच्च न्यायालयों से यह अनुरोध भी किया गया था कि वे लंबित दांडिक अपीलों की संख्या का भी, यदि हो, उल्लेख करें और निष्पादित अपीलों की संख्या का भी, उनके परिणाम के साथ, उल्लेख करें। कुछ उच्च न्यायालयों ने आयोग के अनुरोध का उत्तर दिया। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र ने जिला न्यायाधीशों, मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेटों और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों से प्राप्त विवरण भेजे। फिर भी, दुर्भाग्य से, इन विवरणियों में संबंधित उच्च न्यायालयों की अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले सभी न्यायालय नहीं आए और परिणामस्वरूप ब्यौरों को समेकित करना संभव नहीं हो सका। स्पष्ट रूप से इन्हीं कारणों से उच्च न्यायालय भी जिला न्यायालयों द्वारा प्रस्तुत किए गए ब्यौरों को समेकित करने का प्रयास नहीं कर सके। इसी कारण विवरण ही आयोग को भेज दिए गए। शेष उच्च न्यायालयों से, इस अर्थ में, बहुत कम उत्तर मिले कि केवल थोड़े से ही विवरण सैशन न्यायाधीशों, आदि द्वारा भेजे गए और इस प्रकार समस्त राज्य की जानकारी को समेकित करना बहुत ही कम संभव था। आयोग ने यह ध्यान दिया कि उच्च न्यायालयों में इस विषय में पूरी तरह कार्यवाही करने के बारे में कुछ शिथिलता की भावना थी और यह स्पष्ट है कि इसका कारण उनका अपना कार्यभार था। इन्हीं स्पष्ट कारणों से आयोग अपने अनुरोध के पूर्ण रूप से अनुपालन के लिए उच्च न्यायालयों के पीछे नहीं पड़ सका।

2.9. आयोग ने उपलब्ध जानकारी की परीक्षा की। आंध्र प्रदेश राज्य ही संभवतः उच्च न्यायालय में लंबित दांडिक अपीलों की बाबत एक अकेला अपवाद था। आयोग ने यह ध्यान दिया कि 1988 तक की अपीलें निष्पादित की जा चुकी थीं और इस समय उक्त उच्च न्यायालय वर्ष 1989 की दांडिक अपीलों के निष्पादन में लगा हुआ है जो वास्तव में एक अत्यंत संतोषप्रद

स्थिति है । अन्य उच्च न्यायालयों की बाबत स्थिति प्रसन्नता की नहीं है। सैशन न्यायालयों में और मेट्रोपोलिटन मेजिस्ट्रेटों तथा मुख्य न्यायिक मेजिस्ट्रेटों के न्यायालयों में विचारणों की संख्या बहुत ही अधिक है । न्यायाधीशों द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों के गहरे अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि वर्ष 1982 से अब तक के दांडिक विचारण लंबित हैं । विचारणों के परिणामों के बारे में प्रस्तुत किए गए आंकड़ों से प्राप्त जानकारी के परिणाम असाधारण हैं । निर्मुक्तियों की संख्या 90 प्रतिशत और दोषसिद्धियों की संख्या मात्र 10 प्रतिशत तथा इससे कम है । कुछ न्यायालयों के न्यायाधीशों द्वारा प्रस्तुत जानकारी से यह प्रकट होता है कि "सभी" मामलों में परिणाम निर्मुक्ति (रिहाई) था । आयोग के समक्ष जो न्यायाधीश स्वयं उपस्थित हुए उनसे रिहाइयों की ऊंची प्रतिशतता के असाधारण कारणों के बारे में पूछा गया । सभी न्यायाधीशों का एक उत्तर था । यह बताया गया कि जितनी अवधि तक विचारण लंबित रहता है परिस्थितियां पूरी तरह बदल जाती हैं; कुछ साक्षी गायब हो जाते हैं और कुछ साक्षी, जिनकी गवाही पर अभियोजन पक्ष आश्रित रहता है, पूरी तरह से पलट जाते हैं । इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला तो यह कि समय के साथ-साथ याददाश्त में भी कमी हो जाती है और घटनाओं के बारे में साक्षी को पूरा ध्यान नहीं रह पाता और इसके परिणामस्वरूप साक्षियों के न्यायालय में उपस्थित होने तक, अर्थात्, घटना होने के पश्चात् विचारण में लगे अनेक वर्षों के कारण, मामले विरोधी वक्तव्य दे दिए जाते हैं । दूसरी बात यह है कि, अपराधी और वकीलों की बुद्धिमत्ता का भी विचारण पर प्रभाव पड़ता है । परिणाम यह है कि न्यायाधीशों को प्रायः अत्यंत असंतोषपूर्ण मामलों का सामना करना पड़ता है । वे स्वयं को असहाय पाते हैं और मामले का परिणाम संतोषपूर्ण साक्ष्यों के अभाव के कारण रिहाई में होता है । न्यायाधीशों ने यह कथन किया कि यदि प्रतीक्षा की अवधि में कमी की जा सके तो अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से साक्ष्य के सामने आने की अधिक संभावना हो सकती है । परिणाम यह है कि हमारे सामने पुनः वही समस्या आ जाती है कि न्यायालयों में पिलम्ब को कैसे कम किया जाए ।

2·10. कुछ समाचार-पत्रों की रिपोर्टें दुःख और असंतोष पैदा करती हैं । हाल ही में एक समाचार-पत्र रिपोर्ट[6] एक दांडिक मामले की गाथा कहती है जिसमें 39 वर्ष लगे। इसके कारण राज्य का लगभग एक करोड़ रुपया व्यय हुआ। जबकि मामला 19000 रुपए की राशि के गबन से संबंधित था (12000 रुपए + 4000 रुपए + 3000 रुपए) । एक अन्य मामला[7] सिटी सिविल और सैशन न्यायालय, अम्बई की बाबत है । 1988 में बलात्कार के 124 मामले दर्ज किए गए किन्तु उनमें से केवल एक का निष्पादन किया गया। 1989 के पहले 6 मास में 67 मामले दर्ज किए गए थे किंतु एक का भी निष्पादन नहीं हुआ था । इस जानकारी से यह आश्चर्य होता है कि यदि दोषी को दंड देने में दशाब्दियां लगेंगी तो अपीलों और आगे और अपीलों का क्या होगा । और यदि दशाब्दियों के पश्चात् 90 प्रतिशत मामलों का परिणाम रिहाई में होता है तो वर्तमान प्रणाली से किस सामाजिक प्रयोजन की पूर्ति होगी ।

2·11. अतः, यह कहना अनुचित नहीं होगा कि समस्या अत्यन्त गंभीर है और इस पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है । "अभिवाक्-सौदे" के सिद्धांत की, जो संयुक्त राज्य अमरीका में प्रचलित है, इस असाधारण स्थिति की पृष्ठभूमि में जांच करने की आवश्यकता है ।

अध्याय 3

अभिवाक्-सौदे का सिद्धांत—एक पद्धति जिसका प्रयोग संयुक्त राज्य अमरीका में सफलतापूर्वक किया जा रहा है

3·1. सिद्धान्त—"अभिवाक्-सौदा" क्या है ? अत्यन्त पारम्परिक और सामान्य अर्थ में "अभिवाक्-सौदा" प्रतिपक्षी के साथ विचारपूर्ण बातचीत है जो प्रायः विधि सलाहकार और अभियोजक द्वारा की जाती है जिसके दौरान प्रतिवादी अभियोजक की ओर से कतिपय रियायतों के बदले में दोष स्वीकार करने के लिए सहमत हो जाता है । "अभिवाक्-सौदा" को, अभियोजन की ओर से प्रस्तुत रियायतों के आधार पर दो विभिन्न वर्गों में बांटा जा सकता है । प्रथम वर्ग में वह "आरोप-सौदा" आता है जिसका उल्लेख अभियोजक द्वारा प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए कुछ आरोपों को दोष स्वीकार करने के बदले में कम करने या समाप्त करने के लिए किया जाता है । दूसरा वर्ग, अर्थात्, "दंडादेश-सौदा" उस मामले से संबंधित है जो अभियोजक, दोष स्वीकार करने के बदले में किसी विनिर्दिष्ट दण्डादेश की सिफारिश करने के लिए अथवा दण्डादेश को कोई सिफारिश करने से परिविरत रहने के लिए करता है । दोनों ही पद्धतियां, प्रतिवादी को दिए जाने वाले दण्ड को कम करके, दाण्डिक प्रक्रिया के निष्पादन संबंधी पक्ष को प्रभावित करती हैं ।

3·2. भारत में प्रचलित न होना—भारत का दाण्डिक न्याय "अभिवाक्-सौदे" के सिद्धान्त को इस रूप में मान्यता नहीं देता है । तथापि, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 206(1) और धारा 206(3) तथा मोटरयान अधिनियम, 1988 की धारा 208 (1) का उल्लेख किया जा सकता है । ये उपबंध मामूली अपराधों के लिए अभियुक्त द्वारा दोष स्वीकार करने तथा साधारण जुर्माना देने के लिए समर्थ बनाते हैं जिसके परिणामस्वरूप मामला समाप्त हो जाता है । किन्तु इसमें अभियोजक और अभियुक्त के बीच कोई सौदा नहीं होता । अतः, इस पद्धति के लाभ और हानि की परीक्षा करने के लिए इस सिद्धान्त का, जो अमरीका और अन्य देशों में प्रचलित है, तथा उसके परिणामों का रिहाई से अध्ययन करना आवश्यक है । इस सिद्धान्त के पक्ष और विपक्ष में जो मत व्यक्त किए गए हैं उन पर ध्यानपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है । इस सिद्धान्त पर विस्तारपूर्वक विचार करना वांछनीय होगा जिससे कि इस विषय को समुचित रूप से समझा जा सके ।

3·3·1. आरम्भ—"अभिवाक्-सौदे" की पद्धति अमरीका में एक शताब्दी या इससे अधिक पुरानी है । एक अध्ययन से, उदाहरण के लिए, यह पता लगा है कि यह पद्धति कैलिफोर्निया की आलामेडा काउन्टी में 1880 के लगभग विद्यमान थी । काउन्टी के न्यायाधीश इस बाबत बातचीत किया करते थे कि दोष को स्वीकार करने की दशा में कितना लाभ प्रदान किया जाए । "अभिवाक्-सौदा" तब तक इतना प्रचलित नहीं था जितना कि अब है, और न इस सिद्धान्त के इतना निकट था, किन्तु वह अप्रचलित नहीं था ।

3·3·2. प्रचलित होने का विस्तार—दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करना अमरीका के अनेक राज्यों में अत्यंत प्रचलित है । 1839 में न्यूयार्क राज्य में हर चार दाण्डिक मामलों में से एक में दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करके मामले समाप्त हो जाते थे । शताब्दी के मध्य तक आधे मामलों में दोष स्वीकार करने का अभिवाक् किया जाता था । आलमेडा काउन्टी में तीन चैर अपराधों में से एक में प्रतिवादी दोष स्वीकार कर लेते थे । 1920 में न्यूयार्क सिटी में 100 दोषसिद्धियों में से 88 में, शिकागो में 100 में से 85 में, डलास में 100 में से 70 में, डेसमोइनेस, इंडियाना में 100 में से 79 में दोष स्वीकार करने का अभिवाक् किया जाता था । तब से ही इसकी व्याप्ति रही है ।[1] संक्षेप में, 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही निरन्तर अमरीका में जूरी द्वारा विचारण की संख्या में नियमित तथा ध्यान देने योग्य कमी होती आई है ।

3·4. सिद्धान्त समर्थकों के तर्क—अधिकांश जनसाधारण की राय इस पद्धति के पक्ष में है । इसके समर्थन में पांच तर्क दिए जाते हैं :—

(1) उनका कहना है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों में से, किसी न किसी रूप में, अधिकांश दोषी होते हैं, अतः विचारण के झंझट में क्यों पड़ा जाए;

(2) लोक धन को व्यर्थ क्यों खर्च किया जाए ?

(3) "अभिवाक्-सौदा" एक समझौता है; दोनों ही पक्ष कुछ देते हैं और कुछ प्राप्त करते हैं ।

(4) विचारण में समय और धन दोनों लगते हैं ।

(5) यह (दोनों ही पक्षों के लिए) सर्वोत्तम है कि इसका लाभ लिया जाए क्योंकि एक ओर यह आशंका रहती है कि यदि प्रतिवादी दोषी है भी और साक्ष्य भी पर्याप्त है तब भी बच निकलने का अवसर रहता है । दूसरी ओर प्रतिवादी समय और धन की बचत करता है और कम गंभीर अपराध या दण्डादेश के रूप में रियायत प्राप्त करता है ।

3.5. **विपक्षियों के मत**––दूसरी ओर अमरीका में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जा रही है जो यह अनुभव करते हैं कि "अभिवाक्-सौदा" एक कलंक है और इसकी तीन प्रकार से आलोचना की जाती है :––

(1) "विधि-व्यवस्था के पक्षधर" यह समझते हैं कि इससे प्रतिवादियों के प्रति अत्यधिक सौम्यता प्रकट होती है; खतरनाक अपराधी इस अभिवाक् का आश्रय लेकर जाल में से बच निकलते हैं ।

(2) दूसरों का दावा है कि यह प्रक्रिया निर्दोष लोगों के लिए अनुचित है ।

(3) एक अध्ययन में यह दावा किया गया है कि दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने वाले व्यक्तियों में से एक-तिहाई छूट सकते थे यदि उनका विचारण किया जाता ।

3.6. तथापि, कुछ लोग यह समझते हैं कि इसका अर्थ यद्यपि यह नहीं है कि जो निर्मुक्त किए गए वे अपराध के दोषी नहीं थे किन्तु "अभिवाक्-सौदा", वहां जहां साक्ष्य कमजोर हो, एक कानूनी बहाना उपलब्ध करा देता है । किसी भी दशा में, "अभिवाक्-सौदा" (जैसा कि तर्क दिया जाता है) दाण्डिक प्रक्रिया का मखौला बनाता है । यह 'सम्यक् प्रक्रिया' की तस्वीर में ठीक फिट नहीं होता ।

3.7. अनेक अभियोजकों ने "अभिवाक्-सौदे" को समाप्त करने का प्रयास किया है । मिशीगन की वायन काउन्टी में अभियोजक ने अपने कर्मचारियों को आदेश दिया था कि वे किसी भी ऐसे मामले में सौदा न करें जिसमें प्रतिवादी ने बंदूक का प्रयोग किया । अलास्का के अटार्नी जनरल ने 1975 में "अभिवाक्-सौदे" की पद्धति पर पाबंदी लगा दी थी ।

3.8. **विद्यमान प्रणाली की जांच करने की आवश्यकता**––संयुक्त राज्य अमरीका में इस बाबत जनसाधारण की राय में अत्यंत भिन्नता होने के कारण अनेक क्षेत्रों में सुधार की मांग उठ रही है । कुछ भी कहिए, यह पद्धति अनेक राज्यों में आज भी प्रचलित है और दोष स्वीकार करने के अभिवाक् के आधार पर निष्पादित विचारणों की संख्या निष्पादित मामलों की संख्या से बहुत अधिक है । इस प्रणाली को, जिस रूप में आज चल रही है, इन परिस्थितियों में, यह विश्लेषण करने का लाभ होगा कि इस पद्धति की स्वीकारात्मक बातें भी हैं और नकारात्मक बातों को भी ध्यान से हटाना नहीं होगा ।

3.9. यह उपधारणा कि सामान्यतया निर्दोष व्यक्ति दोष स्वीकार करने का अभिवाक् नहीं करेंगे––संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस पद्धति का अनुमोदन मुख्य रूप से इस उपधारणा के आधार पर किया है कि उन प्रतिवादियों को, जिन्हें दोष स्वीकारोक्ति के सौदे द्वारा किए गए अभिवाक् के आधार पर दोषसिद्ध पाया जाता है, यदि वे विचारण के लिए खड़े होने का निश्चय करते तो सामान्यतया उन्हें दोषसिद्ध पाया जाता । यह सिद्धांत प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोप को कम गंभीर आरोप के रूप में विचार करने अथवा दण्ड के मामले में सहानुभूतिपूर्ण विचार करने का वायदा है । अभियुक्त के लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि उसके व्यय में (विधिक और अन्य) बचत होती है और वह सहमत दण्ड को यथासंभव शीघ्र भोगने के पश्चात् एक नया जीवन आरम्भ कर सकता है तथा विचारण के दौरान जेल में रहने से बच सकता है । अधिकांश मामलों में ऊपर उल्लिखित बातों में से कुछ या सभी बातें ही दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं ।

3.10. **क्या वास्तव में दोषी व्यक्ति आरोप से बच निकलते हैं ?**––अमरीका में जनसाधारण का ध्यान इस समस्या के एक महत्वपूर्ण पक्ष की ओर आकर्षित हुआ है : किस सीमा तक "अभिवाक्-सौदे" ने प्रतिवादियों को कम किए गए आरोप का दोष स्वीकार करने के कारण उनके जुर्म के उचित परिणामों से बचाया है । आरोपित अपराध तथा उस अपराध के बीच, जिसका दोष स्वीकार किया जाता है, अंतर उस विस्तार का अत्यंत स्पष्ट और नाटकीय साक्ष्य है जिस विस्तार तक राज्य के हित का समझौता किया गया है । सौदे की पद्धति का औचित्य इस बात पर निर्भर है कि इस बात की कहां तक संभावना है कि अभियुक्त को दण्ड दिया जाता यदि उसने सौदा नहीं किया होता । यदि अभियुक्त के विरुद्ध मामला कमजोर है तो उसका दोष स्वीकार करने का अभिवाक् ऐसे प्रलोभनों के कारण हो सकता है जो स्वीकारोक्ति की विश्वसनीयता को प्रभावित कर सकता है । बुनियादी तौर पर इस बात की परीक्षा करने की आवश्यकता है कि किसी कमजोर मामले में दोष स्वीकार करने के लिए मजबूर करने के लिए तगड़ा दबाव डाला गया है या नहीं और विशेष रूप से तब जब "सहमति" द्वारा अपराध की स्वीकारोक्ति कराने के लिए अभियोजक का उत्साह प्रतिवादी को स्वयं को अपराध में फंसाने के उसके विशेषाधिकार से टकराता है ।

3.11. **संयुक्त राज्य अमरीका का उच्चतम न्यायालय अभिवाक्-सौदे को संवैधानिक ठहराता है और उसके महत्व को मान्यता प्रदान करता है**––संभवतः अमरीका के उच्चतम न्यायालय के उन दो प्रमुख मामलों का उल्लेख करना उचित होगा जिनमें "अभिवाक्-सौदे" की संवैधानिक वैधता को स्वीकार किया गया है और दाण्डिक मामलों के निष्पादन में इस सिद्धान्त की महत्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख किया गया है ।

संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने "अभिवाक्-सौदे" की संवैधानिक वैधता को **ब्रूडी बनाम यूनाइटेड स्टेट्स**[2] में न्या. व्हाइट ने स्वीकार किया है और न्यायालय की राय प्रकट करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :––

"जिस विषय की हम चर्चा कर रहे हैं वह दाण्डिक विधि और उसके प्रशासन में अंतर्निहित है क्योंकि दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाकों पर कोई संवैधानिक पाबंदी नहीं है क्योंकि दण्ड विधि विलक्षण रूप से न्यायाधीश अथवा जूरी को प्रत्येक मामले में दण्ड निश्चित करने की स्वतंत्रता देती है, और क्योंकि राज्य तथा प्रतिवादी दोनों ही प्रायः विधि द्वारा प्राधिकृत अधिकतम दण्ड की संभावना का निवारण करना लाभप्रद पाते हैं । उस प्रतिवादी को, जिसे निर्मुक्ति की संभावना बहुत कम प्रतीत होती है, दोष स्वीकार करने के अभिवाक् का लाभ और संभावित दण्ड के सीमित होने की बात स्पष्ट रहती है––उसकी आशंका कम हो जाती है, सुधार प्रक्रिया तुरन्त प्रारम्भ हो जाती है और विचारण के कारण होने वाला व्यावहारिक वजन हट जाता है । जहां तक कि राज्य का प्रश्न है, लाभ ही है––दोष स्वीकार करने के पश्चात् तुरन्त अधिरोपित दण्ड द्वारा दण्ड के उद्देश्य को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से प्राप्त किया जा सकता है; और विचारण को हटा देने से उस अल्प शक्ति का लाभ उन मामलों के लिए लिया जा सकता है जिनमें प्रतिवादी के दोष का कोई तात्विक प्रश्न जुड़ा हो अथवा जिसमें इस बारे में काफी संदेह हो कि राज्य सबूत के भार का वहन कर सकता है । इन परस्पर लाभों के कारण ही संभवतः यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि इस समय इस देश में दाण्डिक मामलों में दोषसिद्धियों में से तीन-चौथाई दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् पर आधारित हैं । निःसंदेह उनमें से अनेक दोष स्वीकारोक्तियां इस आशा या आश्वासन पर की जाती हैं कि जो दण्ड न्यायाधीश या जूरी द्वारा विचारण किए जाने के पश्चात् दोषी होने के निर्णय पर दिया जाता है उससे कम दण्ड मिलेगा ।" (25 एल.ए.डी. दूसरा, पृष्ठ 758) ।

3.12. **उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् विधिमान्य है यदि वे स्वैच्छापूर्वक और बुद्धिमत्तापूर्ण हों**––इस बात को प्रकट करने के लिए सामग्री होनी चाहिए कि दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् स्वैच्छापूर्ण है, स्वतः है, और समझकर किया गया है; अभिलेख से सकारात्मक रूप से यह प्रकट होना चाहिए कि वह प्रतिवादी, जो दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करता है, समझकर और स्वेच्छा से ऐसा अभिवाक् कर रहा है उच्चतम न्यायालय ने यह मत भी व्यक्त किया है कि दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् पूर्व आचरण की स्वीकृति है; यह प्रतिवादी की इस बात की सहमति है कि बिना विचारण के दण्डादेश का निर्णय दिया जाए . . . . . ।' यह न्यायाधीश के समक्ष उसके विचारण के अधिकार का अधित्यजन है ।'

उच्चतम न्यायालय ने यह मत भी व्यक्त किया कि :

"दोष स्वीकारोक्ति के ऐसे सभी अभिवाक् जो विधि पूर्ण हैं, जो किन्हीं व्यक्तियों द्वारा इसलिए किए जाते हैं क्योंकि राज्य की विधि ऐसी है कि अपने आप में इस बारे में एक पर्याप्त कारण है कि अभियुक्त आत्मसमर्पण करे और दंड को स्वीकार करे, अथवा किन्हीं व्यक्तियों द्वारा ऐसे अभिवाक् इसलिए किए जाते हैं क्योंकि आशंका और आरोप, दोनों ही सरकार के ऐसे कार्य हैं जो उन्हें अपना दोष स्वीकार करने की धमकी देते हैं, तथा किन्हीं व्यक्तियों द्वारा इसलिए किए जाते हैं क्योंकि प्रतिवादी और उसका सलाहकार इस बात से आश्वस्त हो जाता है कि विचारण से पूर्व संग्रह किया गया साक्ष्य ऐसा है कि विचारण के कष्ट और व्यय को प्रतिवादी और उसका परिवार उचित नहीं मानता । ऐसे अभिवाकों को प्रोत्साहित करने के कारणों में से कुछ के लिए राज्य के उत्तरदायित्व के बावजूद ऐसे अभिवाकों को अनुचित रूप से बाध्यकर होने के कारण किए गए अभिवाक् नहीं कहा जा सकता है ।" (पृष्ठ 751, पैरा 10) ।

3.13. उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय भी दिया कि अभिवाक्-सौदे के अनुसरण में कम दंड का आदेश करना अवैध नहीं है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि :––

"यद्यपि यह तथ्य कि दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाकों का दंडादेशों का आधार होने का प्रचलन इस कारण से है क्योंकि इससे प्रतिवादी और राज्य दोनों को ही लाभ मिलता है, ऐसे अभिवाकों को अनुचित रूप से मान्यता प्रदान नहीं करता है और उस पद्धति को भी जिनका परिणाम ऐसे अभिवाक् हैं, विधिमान्य नहीं बनाता । फिर भी राज्य के लिए यह बात असंवैधानिक नहीं है कि वह किसी प्रतिवादी को उस दण्ड से कम का लाभ प्रदान करे जो विचारण के पश्चात् दिया जाता, जो प्रतिवादी बदले में राज्य को सारभूत लाभ प्रदान करता है और जो अपने जुर्म को प्रकट करता है तथा इस धारणा से एक सुधार प्रणाली में प्रवेश करता है कि वह प्रणाली उसे उस समय से कम समय में ही पुर्नस्थापित होने में सफलता प्रदान करने की आशा प्रदान करती है जो अन्यथा आवश्यक होता ।" (पृष्ठ 751, पैरा 14) ।

उच्चतम न्यायालय ने आगे यह मत भी व्यक्त किया कि :––

"हम यह नहीं कहना चाहते कि दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् के आधार पर दोषसिद्धि में निर्दोष लोगों के लिए कोई खतरा नहीं है अथवा इस देश में इस समय दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् प्राप्त करने के लिए अपनाई गई प्रणालियां सभी प्रकार से आवश्यक रूप से विधिमान्य हैं । दोषसिद्धि की यह पद्धति उस पद्धति की अपेक्षा, जो न्यायालय या जूरी द्वारा पूरा विचारण किए जाने के पश्चात् निर्णीत होती, त्रुटि रहित नहीं है । तदनुसार, हम अनुचित परिणामों

को निवारित करने के लिए पूरी सावधानी बरतते हैं और हमें ऐसा करते रहना चाहिए चाहे दोषसिद्धि का आधार अभिवाक् हो अथवा विचारण ।'' (पृष्ठ 761, पैरा 24) ।

3.14. अभिवाक्-सौदे की विधिमान्यता को संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने सान्टोबेलो बनाम न्यूयार्क[3] के मामले में भी स्वीकार किया था । मुख्य न्या. बर्गर ने, जिन्होंने न्यायालय की राय सुनाई थी, पृष्ठ 261-262 पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया :—

''अभिवाक् पर विचार विमर्श करने के पश्चात् आरोपों का निष्पादन करना न केवल प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है बल्कि अनेक कारणों से अत्यंत वांछनीय भी है । इससे अधिकांश दांडिक मामलों का तुरंत और सामान्यतया अंतिम रूप से निष्पादन हो जाता है, इससे वे लोग जिन्हें विचारण के दौरान जेल से छोड़ने से इंकार कर दिया जाता है, विचारण से पूर्व कारागार में बंद रहने के दौरान मजबूर होकर व्यर्थ गंवाए गए समय के कारण होने वाले क्षयकारी प्रभाव से बच जाते हैं; या जनसाधारण को उन अभियुक्तों से सुरक्षा प्रदान करता है जो विचारण के पूर्व रिहा रहने के दौरान दांडिक आचरण करते रहने के आदी हैं; तथा आरोप और मामले को निष्पादन के बीच के समय को कम करके यह पद्धति ऐसे दोषी व्यक्तियों के पुनर्स्थापन की संभावना की वृद्धि करती है जिन्हें अंतत: जेल में बंद किया जाता है ।''

निस्संदेह न्यायालय ने पूर्व सावधानियों की आवश्यकता पर निम्नलिखित रूप में बल दिया :—

''तथापि, इन सभी तर्कों में इस बात की पूर्व कल्पना की गई है कि अभियुक्त और अभियोजक के बीच उचित रूप से समझौता हुआ है । यह बात अब स्पष्ट है कि, उदाहरण के लिए, दोष स्वीकारोक्ति करने का अभिवाक् करने वाले अभियुक्त ने सलाह प्राप्त की है, अधिकार का अधित्यजन किया है । यू बनाम मिशीगन 335 यू. एस. 155 (1957) फेडरल रूल क्रिमिनल प्रोसीजर 11 में, जो संघीय न्यायालयों में अभिवाकों को शासित करता है, अब यह स्पष्ट किया गया है कि दंडादेश देने वाले न्यायाधीश को, अभिलेख के आधार पर, अभिवाक् के तथ्यपूर्ण आधार को तैयार करना चाहिए, उदाहरण के लिए, अभियुक्त का यह वक्तव्य लेकर कि वह कैसा आचरण था जिसके कारण आरोप लगाया गया । अभिवाक्, निश्चित रूप से, स्वेच्छापूर्ण और समझदारी पूर्ण होना चाहिए तथा यदि वह वायदों का परिणाम है तो वे वायदे किसी न किसी रूप में जानकारी में लाए जाने चाहिए । ऐसा कोई पूर्ण अधिकार नहीं है कि दोष स्वीकार करने के अभिवाक् को स्वीकार किया जाए ।'' लिंच बनाम ओवरहोल्स्टर 369 यू. एस. 705, 719 (1962); फेडरल रूल क्रिमिनल प्रोसीजर 11 । न्यायालय अपने न्यायिक सविवेक का प्रयोग करते हुए अभिवाक् को अस्वीकार कर सकता है ।

''दांडिक प्रक्रिया का यह पक्ष, तथा दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् को स्वीकार करने में अंतर्निहित निर्णायकता इस बात से जुड़ी हुई है कि ऐसे सुरक्षोपाय किए जाएं जो प्रतिवादी को वह बात प्रदान कर सकें जिसका कि वह उन परिस्थितियों में युक्तियुक्त रूप से हकदार है । ऐसी परिस्थितियों में विभिन्नता हो सकती है किंतु उनमें एक निरंतर बात यह है कि जब अभिवाक् -एक पर्याप्त हद तक अभियोजक द्वारा किए गए किसी वायदे या करार पर आधारित है और किसी प्रलोभन प्रतिफल का भाग है तो ऐसे वायदे को पूरा किया जाना चाहिए ।''

न्या. डगलस ने सहमति व्यक्त करते हुए अपने निर्णय में निम्नलिखित विचार प्रकट किए : (पृष्ठ 257)

''न्याय के प्रशासन में यह ''अभिवाक्-सौदे'' राज्य और संघीय स्तर पर महत्वपूर्ण है तथा, जैसा कि मुख्य न्या. ने कहा है, वे आज मुकदमों के भारी बोझ का निष्पादन करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं ।''

3.15. संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने इस मत की निम्नलिखित मामलों में पुन: पुष्टि की है कि यदि ''अभिवाक्-सौदे'' को उचित रूप से प्रयोग में लाया जाए तो वह न्याय प्रशासन की समुचित पद्धति है :

(i) हूटो बनाम रौस[4] में उच्चतम न्यायालय ने अन्य बातों के साथ, यह मत व्यक्त किया कि,

''यदि प्रत्येक दांडिक आरोप के संबंध में पूरा विचारण किया जाए तो राज्य को संघीय सरकार के न्यायाधीशों की संख्या और न्यायालय की सुविधाओं को अनेक गुणा करना पड़ेगा । दांडिक आरोपों का अभिवाक्-विचार-विमर्श अथवा अभिवाक्-सौदे के पश्चात् निष्पादन न केवल दाण्डिक प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है अपितु उसका एक अत्यंत वांछनीय अंग भी है ।''

( ) चाफिन बनाम स्टिंचकाम्बे[5] में उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्वतर मत की, जो सान्टोबेलो के मामले में व्यक्त किया गया था, पुन: पुष्टि की और कहा कि ''अभिवाक्-सौदे'' की प्रथा विधिपूर्ण है इसमें कोई संदेह नहीं है और जहां उसे उचित रूप से प्रयोग में लाया जाए वहां उसे न्यायालय

प्रशासन के एक आवश्यक और वांछनीय अंग के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए ।

(iii) ब्लैकलैज बनाम एलिसन[6] में उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी कि ''अभिवाक्-सौदे'' की प्रथा हाल ही में सामने आई है और दांडिक न्याय प्रशासन के विधिपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार की गई है तथा जब तक सान्टोबेलो का विनिश्चय नहीं हुआ था केवल तब तक ही इस प्रथा की विधिमान्यता के बारे में संदेह था जो दूर हो चुका है ।

(iv) बूहरफोर्ड बनाम बरसी[7] के मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने इसी मत की पुष्टि की ।

3.16. न्यूहन बनाम रयूबेरी[8] में संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने न्या. स्टीवेन्स ने यह विचार प्रकट किया कि : (पृष्ठ 426)

''प्रत्येक अभिवाक्-सौदे का शुद्ध परिणाम प्रतिवादी द्वारा अपने गलत कार्य की स्वीकारोक्ति है और दंड का तथा उससे जुड़े हुए कलंक का अधिरोपण है। यद्यपि ऐसे कुछ मामले हो सकते हैं जिनमें निर्दोष व्यक्ति किसी झूठे अपराध का दोष स्वीकार करने का अभिवाक् इसलिए करते हैं कि वे और अधिक गंभीर आरोप के सिद्धदोष होना नहीं चाहते । यह परिकल्पना करना उचित है कि ऐसे मामले बहुत ही कम होते हैं और केवल अपवाद मात्र हैं, नियम नहीं हैं——अभिवाक्-सौदा अभियोजक और प्रतिवादी के बीच एक व्यावहारिक समझौता है जो मुकदमेबाजी के भार और उसके संभावित परिणाम को तथा दोष स्वीकार करने वाले द्वारा दोष स्वीकार किए जाने पर उसे समुचित दंड देने के समाज के हित को ध्यान में रखकर किया जाता है । प्रतिवादी उस आचरण के लिए, जिस पर दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् आधारित है, अपने गलत कार्य को स्वीकार करता है और आगे अभियोजन से बचता है; अभियोजक को विचारण में जाने की आवश्यकता नहीं रहती और स्वीकार करने वाला दोषी यह पाता है और यह सारी बातें न्यायिक अधीक्षण के अधीन की जाती हैं । प्रतिवादी के दांडिक दायित्व को स्थापित करने और साथ ही साथ सीमित करने के कारण अभिवाक्-सौदा व्यक्ति और सामाजिक लाभ के बीच एक सुंदर संतुलन करता है ।''

3.17. संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का विश्लेषण——ऊपर निर्दिष्ट किए गए और चर्चा किए गए मामलों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि वह तर्क, जिसने अमरीका के उच्चतम न्यायालय को प्रभावित किया था, काफी हद तक इस परिकल्पना पर आधारित है कि वे, जिन्हें दोष स्वीकारोक्ति करने के लिए उकसाया जाता है, हर हालत में सामान्यतया दोषसिद्ध पाए जाते । अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि ''अभिवाक्-सौदा'' प्रतिवादी और राज्य दोनों को ही लाभ प्रदान करता है। न्यायालय ने इस आशय का मत व्यक्त किया कि प्रतिवादी को, जिसे रिहाई का अवसर बहुत कम दिखाई पड़ता है, दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने और इस प्रकार दण्ड को सीमित करने के लाभ स्पष्ट हैं । दूसरी ओर, राज्य की दृष्टि से, वह अभिवाक् जो लंबे विचारण से बचाता है, न्यायिक और अभियोजन साधनों को उन मामलों में प्रयोग किए जाने के लिए बचाता है जिन मामलों में इस बात का काफी संदेह हो कि राज्य सबूत के भार को वहन कर सकेगा । उच्चतम न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् के अन्य लाभों में एक यह भी है कि यह दोषी व्यक्ति के, जब वह अंतत: कारागार में भेजे जाते हैं, पुनर्स्थापन की प्रक्रिया में, वह कैसी भी हो, गति प्रदान करता है ।''

3.18. निष्कर्ष——इस विचार-विमर्श का यह परिणाम निकलता है कि यह पद्धति संविधान अथवा औचित्य के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है और कुल मिलाकर उस जागरूकता से भी मेल खाती है जो समुचित रक्षोपाय उपलब्ध कराने के बारे में जागृत हुई है । आयोग के मस्तिष्क में एक स्कीम है जो विद्यमान विधि तथा राष्ट्रीय दर्शन के संदर्भ में, सभी आक्षेपणीय बातों को दूर करते हुए तथा कतिपय क्षेत्रों में कुछ बुनियादी सुधार प्रस्तुत करते हुए, तैयार की गई है । किन्तु इस प्रश्न पर विचार करने के पूर्व, भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए कुछ विचारों के परिणाम पर, विशेष रूप से विद्यमान विधि के विद्यमान विधिक ढांचे को ध्यान में रखकर, जो कि ऐसी पद्धति को मान्यता प्रदान नहीं करता है, विचार करना उचित है ।

अध्याय 4

आयोग द्वारा सर्वेक्षण

4.1. आयोग ने इस विषय के सभी उपर्युक्त पक्षों को ध्यान में रखते हुए यह अनुभव किया है कि नमूना सर्वेक्षण किया जाना चाहिए और इस विषय पर अंतिम रूप से कोई निर्णय लेने से पूर्व देश के भीतर उन व्यक्तियों की राय संगृहीत की जानी चाहिए जो पूर्ण रूप से अवगत हैं। आयोग का यह विचार रहा कि ऐसी राय चार राज्यों और एक संघ राज्यक्षेत्र के वकील वर्ग और न्यायाधीश वर्ग से संपर्क करके एकत्रित की जा सकती थी। तद्नुसार, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र को न केवल इस बुनियादी प्रश्न पर कि "अभिवाक्-सौदे" का सिद्धांत हमारी दण्ड विधि में आरंभ किया जाना चाहिए या नहीं, बल्कि उन सभी समुचित विषयों पर भी, जो विचार-योग्य हैं, राय एकत्रित करने के प्रयोजन के लिए नमूना सर्वेक्षण करने के लिए चुना गया। एक संक्षिप्त टिप्पण तथा प्रश्नावली (उपबंध क) सभी उच्च न्यायालयों को यह अनुरोध करते हुए भेजी गई कि उसे उच्च न्यायालयों और सैशन न्यायाधीशों तथा मजिस्ट्रेटों के पास भेजा जाए। उक्त प्रश्नावली और टिप्पण उन व्यक्तियों को भी भेजे गए जिनके साथ आयोग स्वयं संपर्क करना चाहता था।

4.2. चारों राज्यों और संघ राज्यक्षेत्र में से प्रत्येक में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, सैशन न्यायाधीशों, मैट्रोपोलिटन तथा मुख्य दाण्डिक मजिस्ट्रेटों, विधि अधिकारियों, आदि, महा-अधिवक्ता, लोक अभियोजक, सरकारी वकील, आदि, अधिवक्ता संगमों के अध्यक्ष, अधिवक्ता परिषद् के अध्यक्ष, विचारण में संलग्न वरिष्ठ विधि परामर्शियों तथा अपील संबंधी दाण्डिक न्यायालयों और अंततः शिक्षाविदों और समाज शास्त्रियों से संपर्क करने के लिए पर्याप्त कार्यक्रम तैयार किए गए। आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश के उच्च न्यायालयों ने उपर्युक्त प्रवर्गों के व्यक्तियों के साथ संपर्क करने के लिए समुचित कार्यक्रम तैयार करने में आयोग को सहायता प्रदान की। दिल्ली उच्च न्यायालय ने भी कुछ सैशन न्यायाधीशों को आयोग के समक्ष उपस्थित होने का और इस विषय पर आवश्यक विचार व्यक्त करने का निदेश दिया। आयोग ने अपने एक सदस्य को उक्त राज्यों में स्वयं जाने और संबंधित उच्च न्यायालयों में बैठकें करने के लिए तथा उच्च न्यायालयों के माननीय न्यायाधीशों, न्यायिक अधिकारियों, विधि अधिकारियों और विशेष रूप से आमंत्रित किए गए परामर्शदाताओं से इस प्रयोजन के लिए आयोग के सदस्यों से मिलने के लिए प्रतिनियुक्त किया। विद्वान सदस्य ने तद्नुसार राज्यों का दौरा किया। आयोग द्वारा किए गए अनुरोध के उत्तर में उसके समक्ष उपस्थित होने वाले विशेषज्ञों के विचार लेखबद्ध किए। उच्च न्यायालयों ने प्रश्नावली को भी प्रचालित किया और उसे विधि आयोग को भी भेजा। आयोग के सदस्य के समक्ष उपस्थित होने वाले व्यक्तियों, स्वयं व्यक्त किए गए विचारों और प्रचालित की गई प्रश्नावली के उत्तर में व्यक्त किए गए विचारों को आयोग के कार्यालय ने समुचित रूप से सारणीबद्ध किया।

4.3. निम्नलिखित सारणी उन विभिन्न व्यक्तियों की विशिष्टियों को प्रकट करती है जिनके विचार आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र में लेखबद्ध किए गए थे। इस सारणी में उन व्यक्तियों की संख्या की बाबत विशिष्टियां भी दी गई हैं जिन्होंने प्रचालित की गई प्रश्नावली के उत्तर दिए थे। यह उल्लेख किया जाता है कि आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और दिल्ली के अतिरिक्त पंजाब, हरियाणा, केरल, हिमाचल प्रदेश और पश्चिमी बंगाल ने भी प्रचालित की गई प्रश्नावली के प्रत्युत्तर भेजे थे।

राज्य	उन व्यक्तियों की संख्या जिनके मत लेखबद्ध किए गए	उन व्यक्तियों की संख्या जिन्होंने प्रश्नावली के उत्तर दिए	योग
आंध्र प्रदेश	17	41	58
कर्नाटक	12	42	54
महाराष्ट्र	35	34	69
उत्तर प्रदेश	30	26	56
दिल्ली	3	17	20
पंजाब और हरियाणा	—	54	54
केरल	—	18	18
हिमाचल प्रदेश	—	22	22
पश्चिम बंगाल	—	41	41
कुल योग	97	325	422

4.4. उन व्यक्तियों का वर्गीकरण, जिनके विचार व्यक्तिगत रूप से लेखबद्ध किए गए थे, निम्नलिखित सारणी में दर्शाया गया है :—

राज्य	उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या	जिला और सैशन न्यायाधीश, मुख्य मेट्रोपालिटन मजिस्ट्रेट और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, उच्च न्यायालयों के रजिस्ट्रार, आदि	विधि अधिकारी, महा-अधिवक्ता, लोक अभियोजक, सरकारी अधिवक्ता, आदि	वकील, जिनके अन्तर्गत विचारण में संलग्न वकील तथा दांडिक न्यायालयों से संबंधित अपीली वकील भी हैं	योग
आंध्र प्रदेश	5	3	4	5	17
कर्नाटक	4	4	3	1	12
महाराष्ट्र	5	4	5	21	35
उत्तर प्रदेश	4	7	5	14	30
दिल्ली	—	3	—	—	3
कुल योग	18	21	17	41	97

प्रश्नावली के प्रत्युत्तर में उच्च न्यायालयों से प्राप्त उत्तरों में उन सैशन न्यायाधीशों, मैट्रोपालिटन मजिस्ट्रेटों, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों के उत्तर भी हैं जिनके मत व्यक्तिगत रूप से लेखबद्ध नहीं किए गए थे।

4.5. विभिन्न राज्यों के व्यक्तियों के लेखबद्ध किए गए मतों और विभिन्न राज्यों द्वारा भेजे गए प्रत्युत्तरों में न्यायिक अधिकारियों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों का विश्लेषण किया गया।

4.6. मूल रूप से दो प्रश्न विचारणीय हैं। **पहला प्रश्न यह है कि "अभिवाक्-सौदे" की स्कीम को भारतीय दाण्डिक न्याय में आरम्भ करना वांछनीय है या नहीं ?** यदि इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है तो आगे और कोई प्रश्न नहीं उठता। यदि पहले प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है तो दूसरा मूल प्रश्न यह है कि **इस स्कीम को सभी वर्गों के अपराधों को बिना किसी भेद-भाव लागू किया जाना चाहिए अथवा केवल विनिर्दिष्ट अपराधों की बाबत ही लागू किया जाना चाहिए ?**

4.7. जिन व्यक्तियों के व्यक्तिगत विचार लेखबद्ध किए गए थे उनमें से 63 व्यक्तियों ने यह मत व्यक्त किया कि "अभिवाक्-सौदे" के सिद्धान्त को लागू करना उचित और लाभप्रद होगा किन्तु 32 व्यक्तियों ने इस सिद्धान्त के आरम्भ करने के विरुद्ध विचार व्यक्त किए। जिन 65 व्यक्तियों ने सिद्धांत आरंभ करने के पक्ष में राय दी थी उनमें से 27 व्यक्तियों ने यह मत व्यक्त किया कि इस स्कीम को बिना किसी भेद-भाव के सभी अपराधों की बाबत लागू किया जाए। शेष 38 व्यक्तियों ने अपने मत के साथ कुछ शर्तें भी जोड़ी थीं। उनके अनुसार स्कीम को केवल विनिर्दिष्ट अपराधों की बाबत लागू किया जा सकता था। यदि विशिष्ट रूप से कहा जाए तो इन व्यक्तियों का यह मत है कि स्कीम को बड़े अपराधों और आर्थिक अपराधों के संबंध में लागू नहीं किया जाना चाहिए। "बड़े अपराधों" के सिद्धान्त पर भी विभिन्न विचार हैं। कुछ का विचार है कि केवल उन अपराधों को छोड़ दिया जाना चाहिए जिनमें मृत्यु दंड या आजीवन कारावास की व्यवस्था है; कुछ की राय में ऐसे अपराध वे हैं जिनके लिए दस वर्ष से अधिक के कारावास की व्यवस्था है; तथा अन्य के विचार ये हैं कि इसके अंतर्गत वे अपराध आते हैं जिनके लिए सात वर्ष और उससे अधिक के कारावास का दण्ड है। ये विचार उन व्यक्तियों के हैं जो हमारी दाण्डिक विधि व्यवस्था में इस सिद्धान्त को आरम्भ करने के पक्षधर हैं।

4.8. यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस मत पर लगभग सभी सहमत हैं कि स्कीम को सामाजिक-आर्थिक अपराधों और ऐसे अपराधों के संबंध में लागू नहीं किया जाना चाहिए जिनमें नैतिक अधमता अंतर्वलित हो।

4.9. इस बात का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि प्रश्नावली के उत्तर में 325 न्यायिक अधिकारियों के प्रत्युत्तर प्राप्त हुए थे। इनमें से 242 न्यायिक अधिकारियों ने सिद्धांत को आरंभ करने के पक्ष में मत व्यक्त किए हैं; शेष 83 अधिकारियों ने इसके विरुद्ध मत व्यक्त किया है। 242 अधिकारियों में से 41 अधिकारी इस स्कीम को सभी अपराधों की बाबत आरम्भ करने के पक्ष में हैं और 201 अधिकारियों ने इस सिद्धांत को सभी अपराधों की बाबत लागू करने के विरुद्ध मत व्यक्त किया है। उन 201 अधिकारियों का, जिन्होंने इस स्कीम को बड़े अपराधों पर लागू करने के विरुद्ध विचार व्यक्त किया है, यह मत है कि इसे केवल कम गंभीर अपराधों की बाबत लागू किया जा सकता है। वे कम गम्भीर अपराधों में उन अपराधों को सम्मिलित करने के इच्छुक हैं जिनके लिए

सात वर्ष और उससे अधिक का कारावास है; जिनके लिए दस वर्ष और उससे अधिक का कारावास है; और जिनके लिए मृत्यु दंड या आजीवन कारावास का दंड है ।

4.10. आंकड़ों का निष्कर्ष निम्नलिखित रूप में आता है :—

उन व्यक्तियों की संख्या जो आयोग के समक्ष स्वयं उपस्थित हुए और अपने विचार व्यक्त किए	97	
उन व्यक्तियों की संख्या जिन्होंने प्रश्नावली के उत्तर दिए	325	
		422
उन व्यक्तियों की संख्या जो सिद्धांत को आरंभ करने के पक्ष में हैं	307	
उन व्यक्तियों की संख्या जो स्कीम को आरंभ करने के विरुद्ध हैं	115	
		422
उन व्यक्तियों की संख्या जो इस सिद्धांत को सभी अपराधों की बाबत आरंभ करने के पक्ष में हैं	68	
उन व्यक्तियों की संख्या जो इस सिद्धांत को केवल विनिर्दिष्ट अपराधों की बाबत आरंभ करने के पक्ष में हैं	239	
		307

इस सर्वेक्षण से इस मत की पुष्टि होती है कि इस पद्धति के ऐसे संशोधित स्वरूप पर, जो भारत की विधि और विधिक सिद्धांतों के लिए उपयुक्त हो, गंभीरतापूर्वक तथा अत्यावश्यकता की दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है । किन्तु ऐसा करने से पूर्व इसी विषय पर कनाडा में जो विचार-विमर्श चल रहा है, जहां विधि आयोग ने कनाडा में अभिवाक्-सौदे की पद्धति की सिफारिश करने के लिए एक श्वेत-पत्र जारी किया है और जहां भारत के ही समान यह पद्धति विद्यमान नहीं है, विचार करना उपयोगी होगा । अगले अध्याय में हम यही प्रयास करेंगे ।

अध्याय 5

कनाडा का विधि आयोग 1989 के एक कार्य पत्र में कार्य की परीक्षा करता है और दांडिक न्याय प्रणाली में उसे आरम्भ करने की सिफारिश करता है

5.1. अन्वेषण के दौरान आयोग ने यह अनुभव किया कि अभिवाक्-सौदे के सिद्धांत की कनाडा के विधि आयोग ने विस्तारपूर्वक परीक्षा की थी । कनाडा के विधि आयोग ने वर्ष 1975 में एक कार्य पत्र सं. 15 जारी किया था जिसका शीर्षक था "दण्ड प्रक्रिया : प्रक्रिया का नियंत्रण" । कनाडा के आयोग ने "अभिवाक्-सौदे" के सिद्धांत को आरम्भ करने के पक्ष में मत नहीं दिया था और उसकी उपयोगिता तथा न्याय के उद्देश्य में वृद्धि करने के माध्यम के रूप में उसकी वांछनीयता, दोनों की बाबत गंभीर रूप से नियंत्रित विचार व्यक्त किए थे । इस विषय की वर्ष 1985 में पुन: परीक्षा की गई और अंतत: वर्ष 1989 में एक कार्य-पत्र सं. 60 जारी किया गया जिसमें दांडिक न्याय प्रणाली में इस सिद्धांत पर विचार करने की सिफारिश की गई थी । कनाडा के विधि आयोग द्वारा वर्ष 1989 के उसके सुधार पत्र में निम्नलिखित टिप्पणियां की गई हैं जो यह स्पष्ट करती हैं कि कनाडा के विधि आयोग ने इस विषय पर पुन: विचार किया और कनाडा की दांडिक प्रणाली में इस सिद्धांत को आरम्भ करने की सिफारिश की :—

"अब हमें विश्वास है, जैसा कि 1975 में नहीं था, कि न्याय ऐसी वस्तु नहीं है जिसे सौदे की मेज पर बैठकर क्रय किया जाए और क्रय की जाती हुई देखा जाए । साथ ही हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि हमारी विधि व्यवस्था में गत वर्षों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए और यह प्रक्रिया आगे और परिवर्तित हो रही है । यद्यपि हम स्वयं को, उन व्यावहारिक और सैद्धांतिक कठिनाइयों के साथ जो अभिवाक् विचार-विमर्श की पद्धति में अंतर्निहित हैं, ध्यान में रखकर चले किन्तु हमें विश्वास है कि इस विषय पर सावधानीपूर्वक पुन: विचार करना बुद्धिमानी होगी और हाल ही के तथा चल रहे विकासों की संख्या के प्रकाश में, जिनका हमारी न्याय प्रणाली के कार्यकरण और प्रकृति पर गहरे और दूरगामी प्रभाव पड़ रहे हैं, विचार करना उचित होगा -------- (पृष्ठ 4)"

"-------- संक्षेप में, हमारी दांडिक न्याय व्यवस्था विकसित हुई है और निरन्तर विकास की प्रक्रिया में है । इस तथ्य की हमारी मान्यता ने ही, बदले में, हमें अभिवाक्-सौदे से संबंधित समस्याओं पर कुछ विस्तारपूर्वक खोज करने के लिए बाध्य किया है जो कि इस समय व्यवहार में आ रही है तथा यह विचार करने पर बाध्य किया है कि इन समस्याओं का प्रभावशील और सैद्धांतिक प्रकार से मुकाबला करने के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिएं (जो कि संपूर्ण रूप से उत्पादन न हों) --------" (पृष्ठ 5)

"--------अत:, हमें विश्वास है कि यह कहने में कोई बाधा नहीं है कि अभिवाक्-सौदे की प्रक्रिया को सामान्य तौर पर जनसाधारण की दृष्टि से कोई विशेष आकर्षक स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ है । क्योंकि यह पद्धति व्यापक रूप से अविनियमित है, इसके अतिरिक्त अभिवाक्-सौदे का दुरुपयोग भी किया जा सकता है, तथापि, इस प्रश्न पर गहराई से विचार करने के पश्चात् और उन संभावित प्रभावों की बाबत जो कि अभिवाक्-सौदे को दूषित करने का प्रयास कर रहे हैं, हाल ही में किए गए अध्ययनों को ध्यान में रखते हुए हम इस बात से आश्वस्त नहीं हैं कि उत्पादन (न कि विनियमन) ही सर्वोत्तम उपचारात्मक विकल्प है । हमने इस बात पर ध्यान दिया है कि कनाडियन सेंटेन्सिंग कमीशन ने दंडादेश सुधार विषय पर अपनी हाल ही की रिपोर्ट में उन अध्ययनों की ओर ध्यान दिया है जो यह उपदर्शित करते हैं कि अभिवाक्-सौदे को दूषित करने के प्रयासों से वास्तव में और अनेक कठिनाइयां सामने आ जाएंगी--------" (पृष्ठ 7)

"कनाडा की सरकार ने "कनाडा के समाज में दांडिक विधि" विषय पर अपने नीति पत्र में स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया है कि अभिवाक्-सौदे की प्रक्रिया प्रत्यक्षत: उन बुनियादी सिद्धांतों से अतुलनीय नहीं है जिन्हें वह प्रतिपादित करती है । इस पद्धति का सीधे-सीधे बहिष्कार करने की अपेक्षा, उक्त सरकार ने यह आशा व्यक्त की है कि स्वविवेक पर नियंत्रण रखने के प्रयास के रूप में उचित उपयोजन संबंधी मार्गनिर्देशों का इस क्षेत्र में विकास किया जाना चाहिए और इस प्रकार दांडिक प्रक्रिया में जवाबदेही और समानता की वृद्धि की जानी चाहिए ।" (पृष्ठ 8)

"हमारे अनुमान में, अभिवाक्-सौदे को एक स्वादरहित प्रणाली के रूप में, जो कि अत्यधिक बोझ से लदी हुई दांडिक न्याय व्यवस्था की असंतोषपूर्ण वास्तविकता के कारण ही आवश्यक है, छोड़ देना एक भूल होगी । अभिवाक्-

सौदा मूल रूप से कोई लज्जाजनक व्यवहार नहीं है; सैद्धांतिक स्तर पर इसे सिद्धांत की असफलता के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता । यदि इसे उचित रूप से व्यवहार में लाया जाए तो यह, इसके विपरीत, दो पूरक सिद्धांतों, अर्थात् दक्षता और नियंत्रण की अभिव्यक्ति और मिश्रण माना जाना चाहिए --------'' (पृष्ठ 8-9)

''अभियोजन समझौते को अनिवार्य रूप से न्याय का संक्षिप्त मार्ग भी नहीं समझा जाना चाहिए । यदि किसी विशिष्ट अभियुक्त के अभियोजन का, जो अभिवाक्-सौदा नहीं करता है, परिणाम अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्धि के रूप में अथवा और अधिक गंभीर अपराध के लिए दोष-सिद्धि के लिए प्रकट होता है, जो उससे भिन्न, जिसके दोषी होने का अभिवाक् करने के लिए अभियुक्त तैयार है, (और उसके परिणामस्वरूप और कठिन दण्ड या अनेक कठोर दंड अभिरोपित किए जाते हैं जो कि अन्यथा अधिरोपित किए जा सकते थे) तो क्या इसका निश्चित रूप से यह अर्थ है कि न्याय समुचित रूप से किया गया है? प्राय: हम ऐसा विश्वास करते हैं कि पूर्ण विचारण भी अपने आप में अन्याय उत्पन्न कर सकता है --------'' (पृष्ठ 9)

5.2. लाभ और हानियों को तोलने के पश्चात् आयोग ने अंतिम रूप से अभिवाक्-सौदे की स्कीम को कानूनी मान्यता प्रदान करने के पक्ष में विचार व्यक्त किया और आयोग ने उसे ''अभिवाक् विचार-विमर्श तथा करार'' नाम देना पसंद किया । आयोग ने यह टिप्पणी की—

''-------- लोगों को यह अधिक आशा है कि सौदा करके दोष स्वीकार करने के लिए किए गए अभिवाक् और संयुक्त रूप से किए गए आवेदन के अनुसरण में दिया गया दंड समुचित होगा यदि उन्हें यह आश्वासन प्राप्त हो जाए कि पीठासीन न्यायाधीश को, खुले न्यायालय में, उस प्रक्रिया से पूर्ण रूप से अवगत करा दिया गया है जिसके द्वारा ऐसा करार हुआ है । ऐसी परिस्थितियों में इस बात की संभावना है कि लोगों को मामले का निपटारा करने वाले न्यायाधीश की न्यायप्रियता और औचित्य में और विश्वास पैदा होगा ।'' (पृष्ठ 13)

5.3. कनाडा के विधि आयोग ने अपने कार्य-पत्र के अध्याय 2 में 23 सिफारिशें की हैं जो कि इस रिपोर्ट के साथ उपाबद्ध हैं । उपाबंध (ख)

5.4 कनाडा के विधि आयोग द्वारा व्यक्त किए गए विचारों और की गई सिफारिशों का गहन अध्ययन उस निष्कर्ष का समर्थन करता है जो इस विषय की वांछनीयता और आवश्यकता की बाबत, शीघ्रतापूर्वक और तुरन्त विचार करने की बाबत, पूर्ववर्ती अध्यायों में दिया गया है । आयोग, विद्यमान विधिक व्यवस्था के संदर्भ में, जो कि अभिवाक्-सौदे की पद्धति को मान्यता प्रदान नहीं करती है, भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचारों की चर्चा करने के पश्चात् ही ऐसा करने के लिए अग्रसर होगा ।

अध्याय 6

वर्तमान विधिक व्यवस्था के संदर्भ में ''अभिवाक् सौदे'' के संबंध में भारत के उच्चतम न्यायालय के विचार

6.1. भारत के न्यायालयों को, दांडिक न्याय प्रशासन पर ''अभिवाक्-सौदे'' की पद्धति के प्रभाव के बारे में, प्रत्यक्ष रूप से विचार करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था । इस बात में संदेह नहीं किया जा सकता कि कुछ विचारणों में, और विचारणों में दिए गए दंडादेशों के विरुद्ध अपीलों में, दंडादेश उन सुझावों को ध्यान में रखते हुए दिया जाता है जो प्रतिवादी के विधि सलाहकार द्वारा दिए जाते हैं और जिनसे अभियोजक सहमत होते हैं । इन औपचारिक समझौतों को विधि कोई मंजूरी प्रदान नहीं करती । तथापि, उन्हें प्राय: संबंधित न्यायालयों के निर्णयों में, समझौते का विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख किए बिना, स्वीकार किया जाता है ।

6.2. आयोग ने इस बात पर गौर किया कि उच्चतम न्यायालय ने दो मामलों में ''अभिवाक्-सौदे'' के प्रभाव की बाबत कुछ टिप्पणियां कीं जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे। क्योंकि ये टिप्पणियां उच्चतम न्यायालय ने की हैं अत: आयोग यह अनुभव करता है कि उनके प्रभाव और महत्व को सावधानीपूर्वक जांचना-समझना होगा । उक्त दो मामले निम्नलिखित हैं :—

(i) मुरलीधर मेघराज लोया, आदि बनाम महाराष्ट्र राज्य आदि—ए आई आर 1976 उ. न्या. 1929 (न्या. कृष्णा अय्यर, गोस्वामी) ।

(ii) कासमभाई अब्दुलरहमानभाई शेख, आदि बनाम गुजरात राज्य तथा अन्य—ए आई आर 1980 उ. न्या. 854 (न्या. भगवती, सेन) ।

6.3. मुरलीधर मेघराज लोया के मामले में उच्चतम न्यायालय को यह लगा था कि प्रतिवादियों ने दोष स्वीकार करने का अभिवाक् किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने अनुभव किया कि ऐसा अभिवाक् ऐसा अनौपचारिक प्रोत्साहन दिए जाने का परिणाम रहा होगा कि मामूली दंड दिया जाएगा । जब यह मामला मामूली दंड के विरुद्ध अपील में आया तो अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के दंडादेश को उलट दिया और सजा बढ़ा दी । तदुपरि, अभियुक्त ने अपील दायर करते हुए उच्चतम न्यायालय तक पहुंच की ।

6.4. उच्चतम न्यायालय ने पृष्ठ 1933 पर, पैरा 13 में, निम्नलिखित मत व्यक्त किया :—

''अनेक आर्थिक अपराधी उन पद्धतियों का आश्रय लेते हैं जिन्हें अमरीका के लोग दांडिक मामलों में ''अभिवाक विचार-विमर्श'', ''अभिवाक्-सौदा'', ''बचाव-सौदे-बाजी'' और ''समझौते'' का नाम देते हैं तथा विचारण करने वाले मजिस्ट्रेट, जो कि कार्य के बोझ में दबे रहते हैं, भीतरी-कक्ष में किए गए ऐसे समझौतों पर सकारात्मक सहमति प्रदान करते हैं । व्यापारी अपराधी, जिसके सामने निश्चित रूप से जेल जाने के दुख और अपमान का चित्र रहता है, उस स्थिति से बच निकलने का सौदा करता है और यह सौदा दोष स्वीकार करने का अभिवाक् होता है, तथा ''जेल नहीं'' होगी, ऐसे वायदे का मिश्रित रूप होता है । दाण्डिक मामलों की सौदेबाजी द्वारा समाप्ति करने की प्रथा के, जैसा कि संयुक्त राज्य अमरीका में प्रचलित है, गुणों के बारे में अनुमान लगाना व्यर्थ है क्योंकि हमारी अधिकारिता में, विशेष रूप से खतरनाक आर्थिक अपराधों और खाद्यान्न संबंधी अपराधों के क्षेत्र में, यह पद्धति सार्वजनिक हित को नष्ट करती है क्योंकि यह पद्धति विधि द्वारा पूर्व निर्धारित न्यूनतम दण्ड के माध्यम से समाज द्वारा व्यक्त किए गए निर्णय के विरुद्ध है तथा विधि के आदेश को गंभीर रूप से ध्वस्त करती है । एटलांटिक पार के विधिवेत्ता इस प्रकार से क्रय किए गए दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् की दुर्गन्ध की निंदा करते हैं पर दार्शनिक तौर पर इसे, ऐसे प्रतिवादी के लिए, जिसने अपने अभिवाक् द्वारा तुरन्त और सुधार संबंधी उपायों का निश्चित प्रवर्तन सुनिश्चित करने में सहायता की है, दण्ड में रियायत के रूप में उचित बताते हैं. . . .''

6.5. उच्चतम न्यायालय ने बढ़ाए गए दण्ड में कोई परिवर्तन नहीं किया क्योंकि कानून ने न्यूनतम दंड विहित किया था । तथापि, उच्चतम न्यायालय ने यह संप्रेक्षण किया कि :

''राज्य को नागरिकों के प्रति न्याय के अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए और बोझ से लदे हुए न्यायालयों को, और अधिक न्यायिक अभिकरणों द्वारा प्रक्रिया में सुधार करके, मुक्त करना चाहिए तथा अज्ञानी जनसाधारण को विलंब से किए जाने वाले निष्पादनों की आलोचना करने के लिए नहीं छोड़ देना चाहिए ।''

6.6. तीन बातें जिन्हें प्रकाश में लाना आवश्यक है :

(1) प्रश्नगत अपराध एक आर्थिक अपराध था जो कि खाद्य के अपमिश्रण से संबंधित था जो निरीह नागरिकों के स्वास्थ्य और कल्याण पर प्रभाव डालता है ।

(2) विधान-मंडल ने न्यूनतम कारावास का दण्ड विहित किया था और विचारण न्यायालय ने विधान-मंडल

की इस इच्छा और आदेश का, सिद्धदोष व्यक्ति को तीन मास के कारावास का दण्ड न देकर, खुले आम उल्लंघन किया था ।

(3) अभिवाक् सौदे की प्रक्रिया को, जिसे भारत की दाण्डिक न्याय व्यवस्था ने मान्यता प्रदान नहीं की है, स्वीकार करने का कोई विधिक प्राधिकार नहीं था ।

6.7. आदरपूर्वक यह उल्लेख किया जा सकता है कि अमरीका के न्यायालयों द्वारा प्रयुक्त अभिवाक्-सौदे का अनिवार्य रूप से यह अर्थ नहीं है कि वह "कारावास नहीं होगा" का समर्थन करता है जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने मुलीधिर के मामले में संप्रेक्षण किया है। इस आशय के संप्रेक्षण स्पष्ट रूप से इस आशंका पर आधारित है कि ऐसे प्रत्येक मामले में जहां अभियुक्त दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करता है और जहां समझौते की बातचीत की जाती है, उसे कोई दण्ड या कारावास दिए बिना छोड़ दिया जाएगा । इसके विपरीत, अधिकांश मामलों में, विचारण पूर्व विचार-विमर्श का परिणाम केवल कम दण्ड हो सकता है और प्रतिवादी को जेल में कारावास भोगने से मुक्ति नहीं मिल जाती । हम संयुक्त राज्य अमरीका के संघ न्यायालय द्वारा अभिवाक्-सौदे की हाल ही की एक घटना का उल्लेख कर सकते हैं जिसमें नई दिल्ली के एक व्यापारी को, अभिवाक् सौदे के अनुसरण में, 42 मास के अधिकतम कारावास की बजाय 33 मास के कारावास का दण्ड दिया गया था । इस मामले का संबंध आर्थिक अपराध से था क्योंकि व्यापारी ने संयुक्त राज्य अमरीका से हाई-टैक उपस्करों के अवैध निर्यात का प्रयास किया था । व्यापारी ने दोष स्वीकार करने का अभिवाक् किया । **अभिवाक् सौदे के परिणामस्वरूप, कारावास का दण्ड 42 मास के कठोर कारावास से कम करके 33 मास के कठोर कारावास के रूप में कर दिया गया ।** उपर्युक्त विषय की बाबत एक रिपोर्ट इण्डियन एक्सप्रेस के तारीख 11-11-1990 के नई दिल्ली संस्करण में प्रकाशित हुई थी । अतः यह मत व्यक्त करना ठीक होगा कि ऐसा सौदा अभियोजन के इस वायदे के रूप में होता है कि **"कारावास नहीं होगा"** अथवा प्रत्येक मामले में अभिवाक् सौदे का परिणाम यह होता है कि अपराधी कारावास का दण्ड भोगे बिना जुर्माने का हल्का दण्ड पाकर बच जाता है ।

6.8. आयोग का यह विचार नहीं है कि, ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों में, उच्चतम न्यायालय द्वारा मुलीधिर के मामले में की गई टिप्पणी ऐसी विधि अधिनियमित करने के विरुद्ध है जो न्यायिक प्राधिकारी द्वारा मामले की सभी परिस्थितियों पर व्यापक रूप से ध्यान देने के पश्चात् और सौदे के रूप में अभियोजन द्वारा कोई व्यवधान उत्पन्न किए बिना कोई रियायत देने की बाबत अधिनियमित की जाती है यदि अपराधी स्वतः ऐसी प्रक्रिया को आरम्भ करता है ।

6.9. अब हम कासमभाई के मामले का उल्लेख करेंगे । हम प्रारम्भ में ही यह उल्लेख करना चाहते हैं कि यह मामला भी खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम (1954) के अधीन था और उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार-विमर्श के आधार पर निर्धारण के विषय पर किए गए संप्रेक्षणों को निम्नलिखित तथ्यों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए :

(1) तीन मास की अवधि के न्यूनतम कारावास को अधिरोपित करने की विधान मंडल की आज्ञा पर ध्यान नहीं दिया गया, और

(2) ऐसे सौदेबाजी की प्रक्रिया का आश्रय लेने के लिए कोई विधिक प्राधिकार नहीं था ।

6.10. इस मामले में, अभियोजक, प्रतिवादी और मजिस्ट्रेट के बीच हुई रजामंदी के आधार पर अभियुक्त ने दोष स्वीकार करने का अभिवाक् किया और विद्वान मजिस्ट्रेट ने अभिवाक् को स्वीकार करते हुए अभियुक्त को एक **मामूली कारावास की सजा देकर, अर्थात् न्यायालय के उठने तक का कारावास और मामूली सा जुर्माना करके अपना निर्णय लेखबद्ध किया ।** अभिलेख से रजामंदी का कोई साक्ष्य प्रकट नहीं होता था किन्तु उच्चतम न्यायालय ने अनुभव किया कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए दण्डादेश रजामंदी के कारण ही हुआ होगा । उच्चतम न्यायालय ने यह व्यक्त किया (पैरा 2, पृष्ठ 854) कि—

> "यह अत्यंत खेदजनक है कि अभियोजक और मजिस्ट्रेट एक अपमिश्रण के मामले के अभियोजन में **"अभिवाक् सौदे"** में सम्मिलित हुए, जिस मामले में समुदाय का स्वास्थ्य और कल्याण अंतर्वलित था ।"

उच्चतम न्यायालय के इस मंतव्य में अभिवाक् सौदे के सिद्धान्त का जो अनुमोदन किया गया है उसे इसके पूर्व प्रकाश में लाए गए तथ्यों के संदर्भ में समझना होगा ।

6.11. कानून में तीन मास के कारावास और पांच सौ रुपए के जुर्माने के न्यूनतम दण्ड का उपबंध किया गया था । उच्च न्यायालय ने कानून द्वारा इस प्रकार उपबंधित न्यूनतम दण्ड के अनुरूप स्वतः ही दण्ड में वृद्धि कर दी थी । निश्चय ही विद्वान मजिस्ट्रेट के पास कानून में उपबंधित न्यूनतम दण्ड पर ध्यान न देने का और कम दण्ड देने का कोई विधिक अधिकार नहीं था । इन्हीं परिस्थितियों में उच्चतम न्यायालय ने, विचारण के प्रक्रम पर पक्षकारों के बीच रजामंदी पर ध्यान न देते हुए, उच्चतम न्यायालय ने जो आदेश किया था और सजा में वृद्धि की थी, उसका समर्थन किया ।

6.12. पृष्ठ 855 पर पैरा 4 में उच्चतम न्यायालय ने सामान्य प्रकृति के कुछ संप्रेक्षण किए हैं जिन्हें यहां उद्धृत किया जाता है :

> "....अपीलार्थी की दोषसिद्धि उसके द्वारा दोष स्वीकार करने के अभिवाक् मात्र पर आधारित थी तथा

> उसकी दोष स्वीकारोक्ति अभियोजक, प्रतिवादी और विद्वान मजिस्ट्रेट के बीच अभिवाक्-सौदे का परिणाम थी । यह स्पष्ट है कि ऐसी दोषसिद्धि, जो अभिवाक्-सौदे के परिणामस्वरूप अपीलार्थी द्वारा दोष स्वीकार करने के अभिवाक् पर आधारित हो, स्वीकार नहीं की जा सकती । हमारे विचार में यह बात लोक नीति के **विरुद्ध है कि दोष के अभिवाक् को स्वीकार करने का प्रलोभन देकर, ऐसे प्रलोभन के आधार पर कि यदि अभियुक्त दोष को स्वीकार करने का अभिवाक् करता है तो उसे आसान सजा देकर छोड़ दिया जाएगा,** लेखबद्ध किए गए अभिवाक् पर आधारित दोषसिद्धि को स्वीकार किया जाए ।
>
> **"ऐसी प्रक्रिया स्पष्ट रूप से अयुक्तियुक्त और अनुचित है और न्यायोचित नहीं है तथा मेनका गांधी के मामले में स्पष्ट किए संविधान के अनुच्छेद 21 के नए क्रियाशील परिक्षेत्र का उल्लंघन करती है ।** इसके अतिरिक्त, **यह न्याय के स्रोत को अपदूषित भी करेगी क्योंकि यह किसी निर्दोष व्यक्ति को एक मामूली और अपरिणामजन्य दण्ड भोगने के लिए दोष को स्वीकार करने के लिए उत्प्रेरित करेगी** बजाय इसके कि वह एक लंबे और कठिन दाण्डिक **विचारण को सहन करे** जो कि न्याय प्रशासन की बोझिल और असंतोषप्रद प्रणाली के कारण न केवल बहुत लंबा होता है अपितु समय और धन को भी नष्ट करता है, और साथ ही उसका परिणाम अनिश्चित और अवैध होता है तथा यह भी संभावना है कि **न्यायाधीश न्याय करने में अपने कर्तव्य के पथ से विचलित हो जाए और वह या तो निर्दोष व्यक्ति को दोष स्वीकार करने के अभिवाक् को स्वीकार करते हुए सजा दे दे या मामूली सजा देकर दोष मुक्त कर दे और इस प्रकार विधि की प्रक्रिया को नष्ट कर दे** तथा अपमिश्रण कानून के विरुद्ध सामाजिक उद्देश्य और प्रयोजन को निष्क्रिय कर दे ।
>
> "इस पद्धति से भ्रष्टाचार को और दुस्संधि को प्रोत्साहन मिलेगा और इसका सीधा परिणाम न्याय के मानक को गिराना होगा । हमारे विचार में इस बात में कोई संदेह नहीं है कि अभियोजक और मजिस्ट्रेट के साथ **अभिवाक् सौदे के परिणामस्वरूप लेखबद्ध की गई दोष स्वीकारोक्ति के आधार पर अभियुक्त की दोषसिद्धि को असंवैधानिक और अवैध ठहराया जाना चाहिए ।"**

6.13. यद्यपि ये संप्रेक्षण एक गंभीर आर्थिक अपराध के संदर्भ में प्रस्तुत किए गए हैं, जिसके लिए न्यूनतम कारावास का दण्ड विहित है, किन्तु यह उच्चतम न्यायालय के मत को भी, सामान्य तौर पर अमरीका की प्रणाली को बिना किसी विधिक प्राधिकार के भारतीय न्यायालयों में ग्रहण किए जाने के संदर्भ में प्रकट करते हैं । अतः, उक्त आपत्तियों के बारे में ध्यानपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है ।

6.14. **अधिविधमान्यता**—उच्चतम न्यायालय का यह संप्रेक्षण कि अभिवाक्-सौदे के परिणामस्वरूप अपीलार्थी द्वारा किए गए दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् पर आधारित दोषसिद्धि को स्वीकार नहीं किया जा सकता, **बिना किसी विधिक प्राधिकार के, औपचारिक तौर पर, किए गए अभिवाक्-सौदे के संदर्भ में समझना होगा ।** यदि कोई विधि दोष को स्वैच्छापूर्वक स्वीकार करने का अभिवाक् करने का और किसी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा विहित मार्गनिर्देशों के अनुसार विधि के कानूनी प्राधिकार के संदर्भ में रियायत देने का उपबंध करती है तो यह कहना संभव नहीं होगा कि दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् के आधार पर दोषसिद्धि त्रुटिपूर्ण है ।

6.15. **लोक नीति**—इसमें संदेह नहीं कि किसी अभियुक्त को दोष को स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करने का प्रलोभन देना लोक नीति के विरुद्ध है जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया है । उच्चतम न्यायालय के समक्ष जो मामला था उसके तथ्यों के संदर्भ में यह उपदर्शित करने के लिए सामग्री थी कि अभियुक्त ने दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् इसलिए किया था क्योंकि उसे अभियोजन और मजिस्ट्रेट द्वारा "प्रलोभन" दिया गया था । **आयोग ने रियायती उपचार स्कीम का उपबंध करने के लिए विधि अधिनियमित करने का जो सुझाव दिया है उसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि कोई प्रलोभन न दिया जाए ।** इसके विपरीत, **प्रस्तावित विधि के उपबंध इस बात को पूर्णतया स्पष्ट कर देते हैं कि यह विचार करना पूर्ण रूप से अभियुक्त का काम है कि दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् दर्ज किया जाए या नहीं** और अभियोजन के साथ कोई सौदेबाजी नहीं की जाएगी । वह विधि, जिसका सुझाव दिया गया है, इस आधार पर अविधिमान्य नहीं होगी ।

6.16. **असंवैधानिकता**—उच्चतम न्यायालय की आपत्ति यह है कि वह प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को अभिवाक्-सौदे के आधार पर, जो प्रलोभन का परिणाम हो, दोषसिद्ध ठहराया जाता है, संविधान के अनुच्छेद 21 को भंग करेगी ।

6.17. संविधान के अनुच्छेद 21 में निम्नलिखित उपबंध किया गया है :

> "किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं ।"

इस आधार पर जो संप्रेक्षण किया गया है वह इस सत्य के संदर्भ में है कि आज जो स्थिति है उसमें न तो दंड प्रक्रिया संहिता और न कोई अन्य विधि अमरीकी मॉडल के अभिवाक्-सौदे को प्राधिकृत करती है । प्रश्नगत मामले में इस पद्धति को विधि के किसी प्राधिकार के बिना ग्रहण किया गया था । इसी पृष्ठभूमि

में अनुच्छेद 21 के उल्लंघन का उल्लेख किया गया था क्योंकि उसमें "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" का वर्णन है । यदि इस प्रक्रिया को प्राधिकृत करने वाला कोई विधिक उपबंध होता तो ऐसी आपत्ति नहीं की जाती । **यही कारण था कि मेघराज के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह संप्रेक्षण किया कि किसी "सुधारपूर्ण प्रक्रिया" को अपनाया जाना चाहिए यदि राज्य चाहता है कि अभिवाक्-सौदे का आश्रय लेकर न्याय किया जाए।** उच्चतम न्यायालय द्वारा कासमभाई के मामले में अनुच्छेद 21 के संभावित उल्लंघन की बाबत जो मत व्यक्त किया है वह केवल उस स्थिति तक सीमित होना चाहिए जहां बिना किसी विधिक मंजूरी के और उचित प्रक्रिया के कोई न्यायालय दोष को स्वीकार करने के अभिवाक् को ग्रहण करता है और विधि के आदेश का उल्लंघन करते हुए अभियुक्त को दोषसिद्ध ठहराता है । ये संप्रेक्षण उस स्थिति में लागू होंगे जहां कोई विधि, बिना किसी सौदेबाजी के (जिसके अंतर्गत अमरीकी माडल का अभिवाक्-सौदा नहीं आता) रियायती उपचार को नियंत्रित करने के लिए प्रस्तावित के अनुसार अधिनियमित की जाती है ।

6.18. यहां संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय के दो महत्वपूर्ण मामलों का उल्लेख करना लाभप्रद होगा, अर्थात्, **ब्राडी** बनाम **संयुक्त राज्य** (25 एल. ई. डी. दूसरा, 747) तथा **सान्टोबेलो** बनाम **न्यूयार्क** [404 संयुक्त राज्य 257 (1971)] (जिनमें अभिवाक्-सौदे को संवैधानिक विधिमान्यता को स्वीकार किया गया था) जिनकी ओर उपर्युक्त दो विनिश्चयों में हमारी उच्चतम न्यायालय का ध्यान आकर्षित नहीं किया गया था ।

6.19. सुविधा की दृष्टि से, संयुक्त राज्य के उच्चतम न्यायालय के दो उपर्युक्त विनिश्चयों से जो सिद्धांत प्रकट होते हैं उन्हें मोटे तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है और संक्षिप्तता की दृष्टि से सुसंगत अंशों को ज्यों का त्यों उपाबंध "ग" पर उपाबद्ध किया गया है । मोटे तौर पर संयुक्त राज्य के उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत प्रकट किया है :—

(1) संविधान दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् पर रोक नहीं लगाता;

(2) विचारण के संवैधानिक अधिकार को छोड़ा जा सकता है परन्तु यह तब जब ऐसा कदम स्वेच्छापूर्वक तथा सुसंगत परिस्थितियों की ओर ऐसे कदम से संभावित परिणामों की, पर्याप्त जानकारी के साथ उठाया जाए;

(3) संयुक्त राज्य अमरीका में 75 प्रतिशत दोषसिद्धियां दोष स्वीकारोक्ति के आधार पर आधारित होती हैं;

(4) दोष स्वीकारोक्ति के आधार पर आधारित दोषसिद्धियां निर्दोषों के प्रति खतरे से खाली नहीं हैं किन्तु अनुभव से यह प्रकट हुआ है कि इस बात की बहुत संभावना नहीं है कि प्रतिवादी सक्षम सलाहकार का परामर्श लेकर स्वयं को झूठे जोखिम में डालेंगे। यह मत इस प्रत्याशा पर आधारित है कि न्यायालय अपना यह समाधान करेगा कि दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् स्वेच्छापूर्वक किया गया था और सक्षम प्रतिवादियों द्वारा परामर्शदाता की पर्याप्त सलाह पर समझ-बूझकर किया गया था और प्रतिवादियों द्वारा किए गए इस स्वीकार के सही होने और विश्वस्त होने पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगाए जा सकते कि उन्होंने वह अपराध किए थे जिनका उन पर आरोप है। सभी विचारण न्यायालयों से अब यह अपेक्षा की जाती है कि वे उन प्रतिवादियों से पूछ-ताछ करें जो दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक करते हैं जिससे कि ऐसे मौलिक अधिकारों का अधित्यजन अभिलेख से सकारात्मक रूप से स्पष्ट हो;

(5) अभिवाक-सौदा न्याय प्रशासन का अनिवार्य अंग है और, यदि उसे उचित तौर पर प्रयोग में लाया जाए तो उसे प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है;

(6) इस पद्धति को वांछनीय समझा जाता है क्योंकि—

(क) यदि, अन्यथा, प्रत्येक दांडिक आरोप का पूरे पैमाने पर विचारण किया जाए तो न्यायाधीशों और न्यायालय संबंधी सुविधाओं की संख्या में कई गुना वृद्धि करना आवश्यक होगा;

(ख) इससे अधिकांश दांडिक मामलों का शीघ्र और अंतिम रूप से निपटान होता है;

(ग) इससे उन लोगों को, जिन्हें विचारण के दौरान रिहा किए जाने से इन्कार किया जाता है, विचारण पूर्व अवधि में कारावास में रहने के दौरान मजबूरन निरोध के कारण होने वाले ह्रास के प्रभाव से बचाया जा सकता है;

(घ) जनसाधारण की उन लोगों की रक्षा की जा सकती है जो विचारण-पूर्व अवधि में रिहा रहने के दौरान दांडिक आचरण करने के आदी हैं;

(ङ) आरोप निर्धारित करने और मामले को निष्पादित करने के बीच के समय को कम करती है, दोषियों को तब, जब वे अंतत: कारावास प्राप्त करते हैं, पुनर्स्थापित करने की संभावनाओं में वृद्धि करती है;

(च) न्यायिक और अभियोजन संबंधी साधनों को उन मामलों के लिए बचाया जा सकता है जिनमें प्रतिवादी के दोष का तात्विक प्रश्न हो या जिनमें

अत्यधिक संदेह हो कि राज्य सबूत के भार का वहन कर सकेगा या नहीं;

(छ) दोष को स्वीकार किए जाने के पश्चात् दिया गया दंड, दंड के उद्देश्यों को प्रभावी रूप से प्राप्त कर सकता है और विचारण से बचा जा सकता है;

(7) राज्य और प्रतिवादी दोनों के लिए प्राय: यह लाभप्रद है कि वे विधि द्वारा प्राधिकृत अधिकतम दंड की संभावना से बचें;

(8) उस प्रतिवादी के लिए, जिसे रिहाई की बहुत कम संभावना दिखाई पड़ती है, दोष स्वीकार करने तथा संभावित दण्ड को सीमित करने के लाभ स्पष्ट हैं, अर्थात् :—

(क) उसका जन प्रचार कम हो जाता है;

(ख) सुधार प्रक्रिया तुरंत प्रारंभ हो जाती है;

(ग) विचारण का व्यावहारिक बोझ समाप्त हो जाता है ।

(9) प्रतिवादी दोष को स्वीकार करने का अभिवाक करने का निर्णय कर सकता है क्योंकि वह समझ सकता है कि विधि का उल्लंघन इस बात का पर्याप्त कारण है कि वह आत्मसमर्पण कर दे और दंड को स्वीकार करें;

(10) प्रतिवादी यह अनुभव करने पर दोष स्वीकार करने का अभिवाक करने का निर्णय कर सकता है कि विचारण का कष्ट और व्यय उसके लिए और उसके परिवार के सदस्यों के लिए, उस साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए जो अभियोजन ने एकत्रित किया है, ग्रहण करने योग्य नहीं है ।

6.20. यद्यपि "अभिवाक-सौदे" की प्रथा, जैसी कि वह अमरीका की प्रणाली में प्रचलित है, संयुक्त राज्य के उच्चतम न्यायालय द्वारा संवैधानिक निर्णीत की गई है, किन्तु हम जिस ढांचे का प्रस्ताव रख रहे हैं वह इस प्रकार का है जिसमें :—

(1) अभियोजक और प्रतिवादी के बीच कोई सौदेबाजी नहीं है;

(2) केवल अभियुक्त ही रियायती उपचार या परिवीक्षा के फायदे के तंत्र का लाभ लेने का आरंभ करेगा और इस प्रकार अभियोजन की ओर से प्रलोभन की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी जाएगी;

(3) अभिवाक-न्यायाधीश द्वारा रियायती उपचार के लिए अभिवाक् पर सुनवाई करने पर अभियुक्त को कोई पूर्व आश्वासन नहीं दिया जाएगा तथा दण्ड निर्धारण न्यायिक विवेक से किया जाएगा;

(4) सात वर्ष से अधिक के दंड से दंडनीय गंभीर अपराधों की अधिकारिता का प्रयोग उच्च न्यायालय के दो सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की एक उच्च शक्ति प्राप्त खंडपीठ करेगी;

(5) आवेदन केवल तब ग्रहण किया जाएगा जब अभिवाक-न्यायालय का यह पूरी तरह समाधान हो जाता है कि वह स्वेच्छापूर्वक, बिना किसी प्रलोभन या भय के, किया गया है और केवल तब जब कोई प्रथमदृष्टया सामग्री हो; और

(6) सभी संभव रक्षोपायों का उपबंध किया जाएगा । ऐसी कोई गुंजाइश नहीं है कि विधि के संबंधित उपबंधों की संवैधानिकता को सफलतापूर्वक प्रश्नगत किया जा सके ।

6.21. उपरोक्त की दृष्टि से आयोग को यह विश्वास है कि रियायती उपचार के लिए ऐसी स्कीम को प्रस्तुत करने वाली विधि की संवैधानिक विधिमान्यता प्रश्नयोग्य नहीं है और संविधान के अनुच्छेद 21 में अंतर्विष्ट उपबंधों का उल्लंघन नहीं होना है।

6.22. **निष्कर्ष**—आयोग के मत में, उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त दो निर्णयों में सम्मिलित संप्रेक्षण उपर्युक्त के अनुसार स्कीम को ध्यानपूर्वक प्रस्तुत करने वाली इस प्रस्तावित विधि के विरुद्ध नहीं हैं जिसमें उपयुक्त मार्गनिर्देश तथा विषय को शासित करने वाली प्रक्रिया अधिकथित की गई है । अत:, अब भारत के विधिक परिवेश के लिए विशेष रूप से विचार की गई स्कीम को तैयार करने के लिए अग्रसर होने का प्रस्ताव है जिसमें आयोग द्वारा किए गए सर्वेक्षण के दौरान, जिसकी चर्चा अध्याय 4 में की गई है, उपदर्शित की गई आपत्तियों को ध्यान में रखा जाएगा ।

अध्याय 7

भारतीय विधि प्रणाली में सिद्धांत आरम्भ करने के बारे में आक्षेपों का उत्तर

7.1. आयोग ने भारतीय दांडिक न्याय में सिद्धांत को आरम्भ करने के बारे में विभिन्न आक्षेपों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है। उठाई गई आपत्तियों और उनके संबंध में आयोग के मत निम्नलिखित प्रकार से हैं।

7.2. **देश की सामाजिक दशा में सिद्धान्त को आरम्भ करना उचित नहीं है**---अनेक प्रत्याशियों ने यह उल्लेख किया है कि अभिवाक् सौदे की स्कीम अमरीका और कुछ अन्य योरोपीय देशों में उन देशों में विद्यमान सामाजिक दशाओं में सफल हो गई होगी। उन देशों में, यह उल्लेख किया जाता है बहुत अधिक साक्षरता है और वहां के लोग, अधिकांशतः, दोष को स्वीकार करने से संबंधित स्कीम को प्रारम्भ करने के परिणामों को समझते हैं। यह कहा जाता है कि हमारे देश में स्थिति वैसी नहीं है क्योंकि यहां साक्षरता बहुत कम है।

7.3. इस बात को समझा जाना चाहिए कि निरक्षर व्यक्ति भी अपने गहन सामान्य ज्ञान के कारण ऐसी स्कीम का आश्रय लेने से होने वाली परिणामों को समझने में समर्थ हैं। यदि वे विधिक सलाह लेने में समर्थ हैं तो उनके लिए विधि सहायता का तंत्र भी उपलब्ध है।

7.4. यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्रतिवादी सामान्यतया अपने विश्वसनीय वकीलों का परामर्श लेते हैं और यह मानने का कोई आधार नहीं है कि कोई प्रतिवादी, सिवाए किसी अत्यंत अपवाद और परिस्थितियों के, ऐसे दोष को स्वीकार करेगा जिसका उसके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन पर इस बात के होते हुए भी प्रभाव पड़ेगा कि वह निर्दोष है। इसके अतिरिक्त, प्रस्तावित स्कीम में इस आपत्ति का ध्यान रखा गया है क्योंकि अभिवाक्-न्यायाधीश के रूप में कार्य करने वाले न्यायिक अधिकारी अथवा उच्च न्यायालय के दो सेवानिवृत्त न्यायाधीश अभियुक्तों को स्कीम के अंतर्गत दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने के परिणामों को स्पष्ट करेंगे।

7.5. **अभियोजन अभिकरणों के दबाव के कारण निर्दोष व्यक्तियों को दोषसिद्ध ठहराया जाएगा**---यह भय भी व्यक्त किया जाता है कि इस बात की संभावना है कि अभियोजन अभिकरण दबाव डालेंगे और निर्दोष व्यक्ति ही ऐसे दबाव में आ जाएंगे। इस भय को दूर किया जा सकता है यदि कोई न्यायिक अधिकारी परिणामों को स्पष्ट कर देता है और किसी पुलिस आफिसर की अनुपस्थिति में अपना यह समाधान कर लेता है कि पुलिस ने शक्ति का प्रयोग नहीं किया है और इस बारे में भी कि आवेदन स्वयं अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत किया गया है जैसा कि हमारे द्वारा तैयार की गई स्कीम में उपबंध किया जा रहा है।

7.6. **निर्धन व्यक्ति ही इस सिद्धांत के अंतिमतः शिकार होंगे**---कुछ लोग यह तर्क जोर के साथ प्रस्तुत करते हैं कि दांडिक न्यायालयों में रिहा किए जाने वालों की संख्या 90-95 प्रतिशत जितनी है और परिणामस्वरूप अभियुक्त और उसका सलाहकार सामान्यतया यह आशा करता है कि नियमित विचारण के पश्चात् रिहाई हो जाएगी। यह दावा किया जाता है कि दोषी कभी अपराध स्वीकार करने के लिए आगे नहीं आएगा यदि उसे रिहाई की तनिक भी संभावना हो। यह दावा भी किया जाता है कि कोई व्यक्ति विचाराधीन बंदी के रूप में कारावास में कितना भी समय इस आशा में व्यतीत करने का इच्छुक होगा कि नियमित विचारण आरम्भ होने पर उसकी रिहाई हो जाएगी। यह उल्लेख किया जाता है कि हर दशा में अमीर, प्रभावशाली और हर बात को जानने वाले अभियुक्त शायद ही दोष स्वीकारोक्ति के सामाजिक और व्यवहारिक परिणामों की जोखिम उठाना चाहेंगे क्योंकि वे यथासमय साफ रिहा हो जाने की आशा करते हैं। अंतिमतः निर्धन व्यक्ति ही दोष स्वीकार करने के लिए आगे आएंगे और परिणामस्वरूप दण्ड भोगेंगे।

7.7. यह ठीक है कि हमारे यहां दाण्डिक विचारणों में रिहाई की दर बहुत अधिक है। रिहाई का प्रधान कारण, जो अनेक सैशन न्यायाधीशों ने ठीक ही बताया था, विचारण आरम्भ करने में होने वाला लंबा विलंब है। आयोग का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया था कि उस लंबी अवधि के दौरान, जब अभियुक्त का विचारण चल रहा होता है, अनेक उलटी-सीधी बातें की जाती हैं। साक्षी जो प्रारम्भ में सत्य बोलने के इच्छुक होते हैं, अभियुक्त की ओर से प्रलोभन दिए जाने के कारण अपने मूल साक्ष्य से पलट जाते हैं। समय बीत जाने से उन साक्षियों द्वारा दी गई गवाही की विश्वसनीयता पर भी प्रभाव पड़ता है। जिनकी गहरी जिरह या प्रतिपरीक्षा की जाती है। विचारण करने में लगने वाले लंबे समय के दौरान स्मरण शक्ति भी क्षीण हो जाती है और साक्षी घटनाओं के वास्तविक क्रम के बारे में कठोर प्रतिपरीक्षा किए जाने के समय भ्रमित हो जाते हैं। यह कहना गलत होगा कि अधिकांश विचारणों का परिणाम रिहाई में होता है क्योंकि प्रतिवादियों द्वारा वास्तव में अपराध नहीं किया जाता। प्रतिवादी दोषसिद्धि से उपर्युक्त कारणों से बच निकलते हैं।

यदि यह मान भी लिया जाए तब भी यह तर्क कि स्कीम सफल नहीं होगी केवल एक कल्पना है और राय की बात है जिसका हम समर्थन नहीं करते। स्कीम का विरोध करने का यह कोई कारण नहीं है।

7.8. इस परिकल्पना के आधार पर अग्रसर होना भी संभव नहीं है कि व्यक्ति विचाराधीन बंदी के रूप में तीन से आठ वर्ष तक कारावास में रहना पसंद करेंगे यदि उन्हें और शीघ्र कारावास से छूटने की संभावना हो। अधिकांश व्यक्ति जानते हैं कि कारावास में लंबी अवधि तक रहने से आर्थिक और सामाजिक हानि होती है। यह सोचना उचित ही है कि ऐसे प्रतिवादी स्वयं को यथासंभव शीघ्र पुनः स्थापित करना चाहेंगे यदि उन्हें उतनी ही अवधि के लिए दोषसिद्ध ठहराए जाने की संभावना है और उन्हें कारावास से मुक्त कर दिया जाएगा।

7.9. **अभियुक्त की ओर से उपस्थित होने वाला वकील स्कीम के अंतर्गत दोष स्वीकार करने की सलाह देने का इच्छुक नहीं होगा**---यह वह तर्क है जिसे इलाहाबाद उच्च न्यायालय में वकीलों ने जोर देकर प्रस्तुत किया था। उनका यह दावा है कि प्रतिवादी की ओर से उपस्थित होने वाले वकीलों से यह संभावना नहीं है कि वे अपने मुवक्किल को स्कीम का आश्रय लेने की सलाह देंगे। पहली बात तो यह कही जाती है कि जैसे ही ऐसी सलाह दी जाएगी, प्रतिवादी का अपना प्रतिनिधित्व करने वाले वकील पर से विश्वास हट जाएगा और वह दूसरा वकील रख लेगा। दूसरी बात यह कही जाती है कि उस व्यक्ति को, जिसने दंड भोगा है, मुक्त होने के पश्चात् यह कहा जाता है कि उसे उसके वकील ने परामर्श न दिया होता तो उसे सजा नहीं भोगनी पड़ती। उसे यह कहा जाएगा कि ऐसा अनेक मामलों में होता है और उसके मामले में भी रिहाई होती। यह आपत्ति भी ठोस प्रतीत नहीं होती और यह विचार को छोड़ देने के लिए उचित आधार नहीं है। निःसंदेह वकील वही सलाह देगा जो उसके मुवक्किल के हित में हो। और, जैसा कि कुछ व्यक्तियों ने व्यक्त किया है, स्कीम के असफल होने की संभावना विधि बनाने वालों की ओर से निष्क्रियता का औचित्य नहीं हो सकती।

7.10. **अभिवाक्-सौदे के कारण अपराधों की संख्या में वृद्धि हो सकती है**---कुछ लोग यह सुझाव देते हैं कि स्कीम के ग्रहण कर लेने से देश में अपराधों की संख्या में वृद्धि हो सकती है। यह दावा किया जाता है कि दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने का कारण किसी व्यक्ति को आराम से रिहाई मिल सकती है और इस प्रकार की सलि रखने वाले व्यक्तियों द्वारा अपराध किए जा सकते हैं। यह तर्क भी दिया जाता है कि अपराधों की पुनरावृत्ति का लोभ भी पैदा हो सकता है।

7.11. पहली बात तो यह कि स्कीम में यह बात नहीं रखी गई है कि आवेदन किए जाने पर वह निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया जाएगा। रियायती उपचार के लिए अनुरोध को स्वीकार या अस्वीकार करने वाला प्राधिकारी सभी परिणामों पर विचार करेगा और विशेष रूप से अपराध की प्रकृति पर भी व्यापक रूप से विचार करेगा तथा उस अनुरोध को स्वीकार या अस्वीकार करने के विवेकाधिकार का प्रयोग करेगा। दूसरी बात यह कि स्कीम को केवल प्रथम अपराध करने वाले तक ही सीमित रखा जा सकता है। वर्तमान विधि में भी प्रथम अपराध करने वाला अनेक अपराधों की बाबत परिवीक्षा पर छोड़े जाने का हकदार है। अतः यह भय निराधार है।

7.12. **अपराधी सीना ठोक कर जाल से भाग निकल सकते हैं**---इसी प्रकार से यह आशंका भी मानने योग्य नहीं है कि स्कीम का आश्रय लेने से अपराधी सीना ठोक कर जाल से बच निकल सकते हैं और दंड से बच सकते हैं। प्रस्तुत की जा रही स्कीम में यह सुनिश्चित किया गया है कि गंभीर अपराधों की बाबत न्यूनतम कारावास का दंड दिया जाए। स्कीम "रियायती उपचार" के लिए है न कि इसलिए कि "दंड न दिया जाए"। कारावास का अवरोधी प्रभाव तो हर दशा में उतना ही बना रहता है चाहे छह मास की अवधि या अठारह मास की अवधि के दंड का कलंक जुड़ा हो। इसके अतिरिक्त, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लम्बे विचारण के पश्चात् भी पचहत्तर प्रतिशत से अधिक मामलों का परिणाम, जैसा कि अन्यत्र चर्चा की जा चुकी है, रिहाई में होता है। अतः आलोचना के इस तर्क में कोई बल नहीं है।

7.13. **कोई सामाजिक कलंक नहीं मिलता**---यह आलोचना अवांछित है। अनेक लाभ मिलते हैं, उदाहरण के लिए :---

(1) न्यायालयों को, जो कि पहले ही बोझ से दबे हुए हैं, समय और साधनों की बचत;

(2) समुदाय और अभियुक्त को भी धन की बचत।

(3) ईमानदारी में विश्वास और जम जाता है।

(4) अपराधी का पुर्नस्थापन और सुधार शीघ्रतर आरंभ हो जाता है और वह बिना समय खोए नया जीवन आरम्भ कर सकता है।

(5) जब अपराधी दोष स्वीकार करता है तो उसे यह अनुभव होता है कि उसने अपराध की भावना से छुटकारा पा लिया है।

टिप्पण---जब किसी अपराधी को "दोष स्वीकार न करने के अभिवाक" के परिणामस्वरूप विचारण के पश्चात् दंडित किया जाता है तो वह अपनी नजरों में स्वयं गिर जाता है। समाज परिणामस्वरूप, यह कहता है कि निर्दोष होने का बहाना असत्य पाया गया। समाज की दृष्टि में भी वह गिर जाता है। यदि दूसरी ओर वह स्वयं को अपराधी अनुभव करता है और अपने दोष को स्वीकार करता है तो उस पर जो अपराध का भार है वह हल्का हो जाता है।

अपराधी द्वारा दोष स्वीकार करने से उसकी आत्मा को संतोष प्राप्त होता है और उसके हृदय के अंतरंग भाग में जो अपराध की भावना है उससे छुटकारा मिल जाता है। अतः, यह चारित्रिक उंचाइयों की ओर बढ़ने का एक महत्वपूर्ण भाग बन जाता है और उसे एक निर्दोष और समाज-स्वीकार्य जीवन व्यतीत करने का वृत लेने की शक्ति प्रदान करता है। यदि पश्चाताप गहरा और सत्य है तो इस बात की संभावना है कि अपराधी में यह भावना उत्पन्न होगी कि उसका चारित्रिक रूप से पुर्नस्थापन हुआ है। इसके परिणामस्वरूप समाज की रक्षा करने का उद्देश्य भी प्राप्त होता है और अपराधी के चारित्रिक और सामाजिक पुर्नजीवन का उद्देश्य भी प्राप्त होता है।

7.14. **सार्वजनिक चर्चा**––इस अध्याय को समाप्त करने के पूर्व हम उल्लेख करना चाहते हैं कि बंगलोर के नेशनल ला स्कूल ने एक सेमीनार की थी और संस्थान के निदेशक ने यह रिपोर्ट दी है कि सेमीनार में भाग लेने वाले विद्वान सदस्यों ने मूल रूप में यह मत व्यक्त किया था कि "अभिवाक्-सौदे" के सिद्धान्त को आरम्भ किया जाना चाहिए।

7.15. एक अन्य सार्वजनिक संस्था ने जो "जागरूक भारत" धारवाड़, कर्नाटक के नाम से ज्ञात है एक सेमीनार की थी। संस्थान के संपादक एक अधिवक्ता हैं। सेमीनार 8-9-90 को की गई थी और उसमें अनेक नागरिकों, अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों, आदि ने भाग लिया था। संस्थान ने आयोग को सेमीनार में व्यक्त किए गए विचारों से अवगत कराया है। यह पता लगा है कि सेमीनार में भाग लेने वाले विद्वान सदस्यों ने यह मत व्यक्त किया था कि "अभिवाक्-सौदे" के सिद्धांत को दांडिक न्याय प्रणाली में आरम्भ किया जाना चाहिए।

7.16. **निष्कर्ष**––इस विषय पर लाभ और हानियों को तोलने पर यह अनुभव किया गया है कि अपराधियों के संबंध में, जो स्वेच्छा से स्कीम का आश्रय लें, और जिस स्कीम में समुचित सुरक्षोपाय किए गए हों, रियायती उपचार की ऐसी योजना लाभप्रद सिद्ध हो सकती है।

7.17. इसमें परिवीक्षा पर मुक्त किए जाने से संबंधित उपबंध भी होंगे जो कि कानून में पहले से विद्यमान हैं और वे वास्तव में प्रभावी रूप से होंगे। एक लम्बा और पूरा विचारण समाप्त होने के पश्चात्, जिसमें समय, शक्ति और धन साक्ष्य को लेखबद्ध करने में और दोष के निष्कर्ष लेखबद्ध करने में लगता है, इन उपबंधों का बहुत कम उपयोग रह जाता है। यदि स्कीम का आश्रय लिया जाता है तो अपराधी विचारण के कष्टों की भेंगे बिना परिवीक्षा से संबंधित उदार उपबंधों का लाभ ले सकता है। अतः इस विचार को त्यागा नहीं जाना चाहिए। वास्तव में ऐसी उचित स्कीम को तैयार करने की अत्यधिक आवश्यकता को ठुकराया नहीं जा सकता।

अध्याय 8

क्या सिद्धांत को सभी अपराधों पर लागू किया जाए

8.1. हमने ऐसे अनेक व्यक्तियों का पहले ही उल्लेख किया है जो स्कीम को कुछ शर्तों के साथ हमारी दांडिक न्याय प्रणाली में आरम्भ करने से सहमत हैं। शर्तें यह हैं कि (1) सामाजिक-आर्थिक अपराधों को अपवर्जित किया जाए, (2) स्कीम को "कम गंभीर अपराधों" तक सीमित रखा जाए।

8.2. **स्कीम का कतिपय अपराधों को लागू न होना**––आयोग ने उपर्युक्त सुझावों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है। जहां तक यह सुझाव है कि स्कीम को नैतिक अधमता से अंतर्वलित अपराधों और सामाजिक-आर्थिक अपराधों पर लागू नहीं किया जाना चाहिए, स्कीम के प्रारंभिक भाग में ऐसे अपराधों को स्कीम के परिक्षेत्र से अपवर्जित करने की बात है। स्कीम में यह बात भी है कि इसका विस्तार इस शर्त के साथ किया जाए कि हर दशा में एक न्यूनतम अवधि के कारावास का दंड, उदाहरण के लिए, एक वर्ष, अधिरोपित किया जाए। स्कीम में यह बात भी है कि इसका आगे विस्तार पायलट स्कीम के कार्यकरण के परिणामों की जांच करने और एक सार्वजनिक चर्चा करने के पश्चात् ही किया जाए।

8.3. यह उल्लेख किया जा सकता है कि आर्थिक अपराधों से संबंधित वर्तमान कानूनों में ऐसे अनेक तकनीकी अपराध हैं जिनके लिए दंड की व्यवस्था है। कतिपय कानूनी विवरणियों को समय के भीतर दाखिल करने में असफलता, अपेक्षित जानकारी को अभिहित प्राधिकारियों के समक्ष समय के भीतर प्रस्तुत करने में असफलता, आदि ऐसे कुछ तकनीकी अपराध हैं जिनके लिए कारावास और जुर्माना दोनों ही दंड की व्यवस्था है। स्कीम का विस्तार प्रथम चरण के दौरान प्राप्त किए गए अनुभव के प्रकाश में ऐसी ही शर्तों के साथ किया जाए या नहीं इस बात पर विचार उचित समय पर एक सार्वजनिक चर्चा के पश्चात् ही किया जाएगा।

8.4. जहां तक कुछ क्षेत्रों से प्राप्त इस सुझाव का प्रश्न है कि स्कीम को "कम गंभीर अपराधों" के बारे में ही लागू किया जाना चाहिए, आयोग की यह राय है कि जिस रूप में स्कीम तैयार की गई है उसमें सभी अपराधों को इस शर्त के अधीन रहते हुए सम्मिलित किया जा सकता है कि पहली बार में स्कीम को केवल सभी केन्द्रीय अधिनियमों के अधीन ऐसे अपराधों पर लागू किया जाए जिनके लिए सात वर्ष से कम कारावास का दंड है। जिन अपराधों के लिए संबंधित कानूनों में सात वर्ष से अधिक के कारावास की व्यवस्था है उनमें स्कीम को विस्तारित करने की बात पर तब विचार किया जा सकता है जब स्कीम को सात वर्ष से कम कारावास के दंड की व्यवस्था वाले अपराधों की बाबत लागू करने के परिणामों पर ध्यानपूर्वक विचार कर लिया जाए। यदि परिणामों पर ऐसा विचार करने के पश्चात् यह अनुभव किया जाए कि स्कीम को अन्य अपराधों की बाबत भी लागू किया जाना चाहिए तो उसका विस्तार इस प्रकार प्राप्त अनुभव के प्रकाश में और इस प्रकार प्राप्त अनुभव के संदर्भ में उत्पन्न जनमत के प्रकाश में किया जा सकता है।

8.5. जहां तक सिद्धांत को राज्यों द्वारा अधिनियमित विभिन्न विधियों के अधीन अपराधों पर लागू करने की बात है, आयोग यह अनुभव करता है कि इस बारे में विनिश्चय करने का कार्य संबंधित राज्यों पर छोड़ दिया जाना चाहिए क्योंकि प्रत्येक राज्य की सरकार का इस विषय के बारे में अपना मत हो सकता है।

8.6. जहां तक गंभीर अपराधों के प्रवर्ग की बात है, इस स्कीम को, विभिन्न चरणों में लागू करने के प्रयोजन के लिए उप-विभाजित किया जा सकता है। पहले चरण में ऐसे अपराधों के उप-प्रवर्ग को, जिनके लिए मृत्यु या आजीवन कारावास का दंड है, अपवर्जित किया जा सकता है और स्कीम को ऐसे उप-प्रवर्ग की बाबत बाद में, अन्य उप-प्रवर्गों के कार्यकरण से प्राप्त किए गए अनुभव तथा जागृत हुई लोक चर्चा के प्रकाश में, विस्तारित किया जा सकता है।

8.7. अब उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में हम स्कीम तैयार करने की दिशा में अग्रसर होना चाहते हैं।

अध्याय 9

कानून में सम्मिलित किए जाने वाले मार्गनिर्देश और प्रक्रिया

9.1 स्कीम को क्रियान्वित करने के लिए और वह निरापद रूप से कार्यशील हो इसके लिए यह आवश्यक होगा कि कानून में दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन करके और इस निमित्त एक पृथक् अध्याय सम्मिलित करके, वह प्रक्रिया, जिसका अनुसरण किया जाएगा, तथा वे मार्गनिर्देश, जो इसमें आगे उपदर्शित के अनुसार लागू किए जाएंगे, जोड़े जाएं ।

9.2. **प्रस्तावित प्रक्रिया के जो मुख्य आधार हैं उन्हें उजागर करने के लिए एक स्पष्टीकरण टिप्पण जोड़ दिया गया है जिसका उद्देश्य सिफारिश के आधार पर बल देना है ।**

9.3. **सक्षम प्राधिकारी**––स्कीम के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने की अधिकारिता का प्रयोग स्कीम के अधीन परिभाषित सक्षम प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा :––

(क) **दांडिक मामलों के संबंध में, जहां सुसंगत कानून उस अपराध के लिए, जिसका किया जाना अभिकथित है, सात वर्ष से कम के कारावास का दंड का उपबंध है, एक मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट, जिसे उच्च न्यायालय विशेष रूप से "अभिवाक न्यायाधीश" अभिहित करेगा, सक्षम प्राधिकारी के रूप में कार्य करने के लिए सशक्त होगा ।**

(ख) ऐसे दांडिक मामलों के संबंध में, जहां सुसंगत कानून, उस अपराध के लिए, जिसका किया जाना अभिकथित है, सात वर्ष या उससे अधिक के कारावास का उपबंध करता है, उच्च न्यायालय के दो सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से गठित एक समिति, जो संबंधित सरकार द्वारा मुख्य न्यायाधीश और उसके दो वरिष्ठतम सहयोगियों के परामर्श से, सम्यक् रूप से नियुक्त की जाएगी, और जो स्कीम के अधीन आवेदनों को ग्रहण करने और उन पर विचार करने के लिए होगी, स्कीम के अधीन सक्षम प्राधिकारी के रूप में कार्य करेगी ।

9.4. **टिप्पणी**––अधिनियम को क्रियान्वित करने वाले तंत्र को, उन कारणों से जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे, दो प्रवर्गों में बांटा गया है । ऐसे अपराधों के संबंध में जिनका किसी अभियुक्त द्वारा किया जाना अभिकथित है और जिनके लिए सात वर्ष या अधिक के कारावास का दंड है, उच्च-शक्ति प्राप्त प्राधिकरण का गठन करना उपयुक्त समझा गया है जिसमें उच्च न्यायालय के दो सेवानिवृत्त न्यायाधीश होंगे और जिन्हें मिलाकर एक खंडपीठ का गठन शक्तियों का प्रयोग करने के प्रयोजन के लिए किया जाएगा । यह बात उन अपराधों की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए आवश्यक समझी गई है जिनकी बाबत स्कीम के उपबंधों का उपयोग संबंधित अपराधी कर सकेगा । ऐसे अपराध जो सुसंगत कानून के अधीन सात वर्ष या अधिक के कारावास से दंडनीय हैं, उनकी प्रकृति के कारण ही गंभीर अपराध हैं और उन पर ऐसे उच्च हैसियत के प्राधिकारियों द्वारा विचार करना आवश्यक है, जिसकी हैसियत, क्षमता, विवेक और ईमानदारी में संपूर्ण रूप से विश्वास किया जा सके । यही कारण है कि ऐसे प्राधिकरण का गठन करने के लिए समुचित उच्च स्तर की आवश्यकता है । साथ ही साथ, छोटे अपराधों के संबंध में और तुलना में कम मामूली अपराधों के संबंध में, ऐसी शक्तियों को ऐसे उच्च शक्ति प्राप्त प्राधिकरण को सौंपने के उलटे परिणाम हो सकते हैं । इसके परिणामस्वरूप उच्च प्राधिकरण का समय तुलना में कम महत्वपूर्ण विषयों में लग जाएगा और परिणामतः भी नहीं होगा । यदि ऐसी उच्च शक्ति प्राप्त समिति की समिति कम महत्वपूर्ण काम में लगी रहेगी । वह व्यावहारिक भी नहीं होगा । यदि ऐसी उच्च शक्ति प्राप्त समिति को तुलना में छोटे अपराधों में उलझा दिया जाएगा, जैसे कि चोरी, शारीरिक क्षति या अतिक्रमण आदि, तो समिति अपने कृत्यों का निर्वहन दक्षतापूर्वक और अपने विवेक का गंभीरता के साथ प्रयोग करते हुए नहीं कर सकेगी । यही कारण है कि सात वर्ष से कम के कारावास से दंडनीय अपराधों के संबंध में एक व्यावहारिक फार्मूला निकाला गया है, और वह यह है कि किसी मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को "अभिवाक-न्यायाधीश" के रूप में अभिहित किया जाए । यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसी सक्षम प्राधिकारी को, जिसकी, अच्छी साख हो और जिसका गोपनीय अभिलेख संतोषप्रद हो, इस कार्य को लिए चुना जाता है, यह सुझाव दिया गया है कि मजिस्ट्रेट या मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट का अभिवाक-न्यायाधीश के रूप में चयन उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए जिससे यह आशा की जाती है कि वह संबंधित न्यायाधीश के पूर्ववृत्त और उपयुक्तता के बारे में जानता है । अभिवाक-न्यायाधीश किसी मुकदमे का विचारण नियमित न्यायाधीश के रूप में यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से नहीं करेगा कि मामले का निपटारा शीघ्रता से कर दिया जाए और इस तंत्र का लाभ उठाने वाले अपराधी को यह आशंका नहीं होगी कि उसके आवेदन के रद्द कर दिए जाने की दशा में मामले का विचारण अभिवाक-न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा जो इस तथ्य के कारण पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो सकता है कि अभियुक्त ने स्कीम का

फायदा लेने का दावा करने के उद्देश्य से दोष स्वीकार करने का अभिवाक किया था ।

9.5. **जहां तक इस तंत्र का उन अपराधों से संबंध है जिनका अभियुक्त द्वारा किया जाना अभिकथित है और जो सात वर्ष या अधिक के कारावास से दंडनीय हैं**, यह सुझाव दिया गया है कि नियुक्ति मुख्य न्यायाधिपति और उसके दो वरिष्ठतम सहयोगियों के परामर्श से की जानी चाहिए जिससे कि उपयुक्त हैसियत के ऐसे सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को, जिनकी अच्छी साख हो, इस प्रयोजन के लिए चुना जाए । जन-साधारण और प्रशासन में विश्वास पैदा करने के प्रयोजन के लिए, यह सुझाव दिया गया है कि सक्षम प्राधिकरण में दो सेवानिवृत्त न्यायाधीश होने चाहिए जो खंडपीठ का गठन करेंगे । ऊपर जिस चयन पद्धति का सुझाव दिया गया है और सक्षम प्राधिकारी के लिए विहित की गई अर्हताएं पर्याप्त होनी चाहिए जिससे कि प्रशासन और जन-साधारण, तथा अभियुक्त, के मन से हर आशंका दूर हो जाए और सभी संबंधित व्यक्तियों में विश्वास पैदा हो ।

9.6. **तंत्र का उपयोग कैसे किया जाएगा**––यह उपबंध करना उपयुक्त होगा कि तंत्र का प्रयोग स्कीम का लाभ लेने के इच्छुक अभियुक्त की ओर से एक लिखित आवेदन द्वारा प्रारम्भ किया जाएगा ।

9.7. संयुक्त राज्य अमरीका में प्रचलित स्कीम में और जिसका प्रस्ताव कनाडा के विधि आयोग ने अपने कार्य-पत्र में किया है, उस स्कीम में यह उपबंध है कि लोक अभियोजक और अभियुक्त आपस में विचार-विमर्श करने के पश्चात् एक आवेदन करें । वर्तमान आयोग ने जो स्कीम तैयार की है उसमें विचलन किया गया है और ऐसे तंत्र की उपधारणा की गई है जिसका प्रयोग केवल अभियुक्त की ओर से आरंभ होगा । ऐसे विचलन के चार उचित कारण हैं । प्रथम तो, यह आयोग इस बात को उपयुक्त नहीं मानता कि अभियुक्त और लोक अभियोजक के बीच कोई विचार-विमर्श या सौदे-बाजी हो । ऐसी सौदे-बाजी या तोल-मोल के परिणामस्वरूप जन-साधारण का विश्वास समाप्त हो सकता है । जब कोई अपराध कर दिया गया हो, तो अंतिम निर्णय सक्षम प्राधिकारी के रूप में कार्य करने वाले न्यायिक अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए और लोक अभियोजक की सौदे-बाजी के प्रयोजन के लिए बिचौलिये के रूप में कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए । वास्तव में, सौदे-बाजी अपने-आप में कुछ हद तक निंदनीय मानी जा सकती है । इससे तभी बचा जा सकता है जब सौदे-बाजी और बात-चीत को दूर ही रखा जाए और केवल अभियुक्त को स्कीम का लाभ लेने के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष आवेदन करने के लिए प्राधिकृत किया जाए । दूसरी बात यह है कि, वर्तमान समय में, लोक अभियोजक की विश्वसनीयता में भी जन-साधारण में से अनेक को और प्रशासन को संदेह हो सकता है । ऐसी आशंका बनी रहने की संभावना है कि लोक अभियोजक और अभियुक्त के बीच आपत्तिपूर्ण कारणों से कोई भीतर ही भीतर सौदा हो गया हो । इन सब बातों से बचा जा सकता है यदि लोक अभियोजक की कोई भी भूमिका स्कीम के अधीन तंत्र को आरंभ करने में रहे तो कार्य का आरंभ इस निमित्त केवल अभियुक्त द्वारा ही किया जाए । **तीसरी** बात यह है कि, यह आशंका कि लोक अभियोजक **ने अभियुक्त** द्वारा दोष स्वीकार करने का अभिवाक करने के लिए अभियुक्त पर दबाव डाला होगा, दूर हो जाएगी यदि लोक अभियोजक और अभियुक्त के बीच कोई संपर्क नहीं होता है और लोक अभियोजक को स्कीम के अधीन कार्यवाहियां आरंभ करने का कोई प्राधिकार नहीं दिया जाता है और केवल अभियुक्त ही ऐसा कर सकता है । जब इस बात का विनिश्चय करने का अवसर कि आवेदन किया जाए या नहीं केवल अभियुक्त को ही रहेगा तो व्यवहारिक दृष्टि से लोक अभियोजक द्वारा उस पर दबाव डालने की कोई जोखिम नहीं रहेगी । **चौथी** बात यह है कि इससे यह भी सुनिश्चित हो जाएगा कि आवेदन स्वेच्छापूर्वक तथा सम्यक् रूप से विचार करने, लाभ-हानि पर विचार कर लेने के पश्चात्, अभियुक्त द्वारा उठाए गए कदम का परिणाम है ।

9.8. **आवेदन कब किया जा सकता है**––आवेदन, प्रथम सूचना दिए जाने पर पुलिस द्वारा संस्थित किसी मामले में आरोप-पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् किसी भी समय किया जा सकता है ।

9.9. **टिप्पणी**––जब तक आरोप-पत्र फाइल नहीं होता, अन्वेषण करने वाला अभिकरण अभियोजन के मामले के समर्थन में सामग्री एकत्रित करने में लगा रहेगा । अतः, यह उपबंधित समझा गया है कि आवेदन केवल आरोप-पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् किया जा सकेगा ।

9.10. **प्राइवेट व्यक्तियों द्वारा किए गए परिवादों के संबंध में** अर्थात्, पुलिस द्वारा प्रथम सूचना पत्र प्रस्तुत करने से भिन्न रूप से किए गए परिवादों के संबंध में, आवेदन न्यायालय द्वारा आदेशिका जारी किए जाने के पश्चात् किसी भी समय किया जा सकता है ।

9.11. **समन मामलों में**, अभियुक्त ऐसा आवेदन दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 251 के अधीन उसका अभिवाक् लेखबद्ध किए जाने के पूर्व कर सकता है ।

9.12. **वारण्ट मामलों में**, आवेदन तब किया जा सकता है जब **मामला आरोप के लिए परिपक्व हो, किन्तु आरोप की विरचना न की गई हो ।**

9.13. **टिप्पणी**––समय के बारे में कोई उपबंध करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्राइवेट परिवाद के मामले में परिवादी ने सामग्री परिवाद प्रस्तुत करने से पूर्व एकत्रित कर ली होगी और वह उसे सक्षम प्राधिकारी को उपयुक्त विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए उपलब्ध करा सकता है ।

अभियुक्त को ऐसा आवेदन अपना अभिवाक् करने के पूर्व ही करना होगा क्योंकि यह स्वाभाविक है कि दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् केवल सक्षम प्राधिकारी के समक्ष किया जा सकता है यदि रियायती उपचार की स्कीम का आश्रय लिया जाना है और दोष अस्वीकार करने के अभिवाक् के पश्चात् ही विचारण आरम्भ हो सकता है ।

9.14. **आवेदन संस्थित किए जाने पर अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया**––सक्षम प्राधिकारी आवेदन पर प्रारम्भिक सुनवाई के लिए तारीख नियत करेगा और उसकी सूचना आवेदक को लिखित में देगा अथवा न्यायालय का कोई अधिकारी उसे सुनवाई की तारीख के बारे में व्यक्तिगत रूप से अवगत कराएगा और, इस साक्ष्य के रूप में कि अभियुक्त को अवगत करा दिया गया है, उसके हस्ताक्षर लेगा और यह कार्यवाही सुसंगत अभिलेख को विचारण न्यायालय से प्राप्त किए जाने के पश्चात् ही की जाएगी। ऐसा अभिलेख विचारण न्यायालय द्वारा इस निमित्त अध्यपेक्षा प्राप्त करने के दस दिन के भीतर भेज दिया जाना चाहिए ।

9.15. सुनवाई के लिए नियत की गई अथवा किसी अन्य तारीख को जिसके लिए सुनवाई स्थगित की गई हो, **सक्षम प्राधिकारी खुले न्यायालय में अभियुक्त से यह सुनिश्चित करेगा कि स्कीम के अधीन आवेदन उसने स्वेच्छापूर्वक और बिना किसी प्रलोभन या किसी की ओर से किसी भी दबाव के बिना इच्छापूर्वक किया है** । अभियुक्त का ऐसा प्राथमिक परीक्षण करते समय, **सक्षम प्राधिकारी अपना यह समाधान करेगा कि सुरक्षा अधिकारी को छोड़कर न्यायालय में न तो लोक अभियुक्त और न कोई पुलिस अधिकारी उपस्थित है**, ताकि किसी भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दबाव की संभावना को दूर किया जाए और यह सुनिश्चित हो सके कि आवेदन स्वेच्छापूर्वक किया गया है ।

9.16. **कार्यवाही के परिणाम से अभियुक्त को अवगत करना**––आवेदक को उपरोक्त तथ्यों को अवगत कराने और सक्षम प्राधिकारी द्वारा यह समाधान कर लेने के पश्चात् कि आवेदन स्वेच्छापूर्वक किया गया है, दूसरा कदम यह है कि सक्षम प्राधिकारी लोक अभियोजक और व्यथित पक्षकार तथा/अथवा अन्य पक्षकार को सुनने के लिए और अंतिम रूप से निष्पादन करने तथा अंतिम आदेश देने के लिए एक तारीख नियत करे । यदि सक्षम प्राधिकारी का यह समाधान नहीं हो जाता है कि आवेदन स्वेच्छापूर्वक किया गया है अथवा आवेदनकर्ता, परिणामों को समझने के पश्चात् आवेदन पर और आगे कार्यवाही किए जाने के लिए तैयार नहीं है तो वह आवेदन को रद्द कर सकता है ।

9.17. **आवेदन रद्द न किए जाने की दशा में प्रक्रिया**––सक्षम प्राधिकारी अभियुक्त को यह स्पष्ट करेगा कि दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने पर, वह लोक अभियोजक और व्यथित व्यक्ति को सुनने के पश्चात्, ऐसे अपराध के लिए, जो किया गया प्रतीत हो, दण्डादेश कर सकता है और लोक अभियोजक तथा व्यथित पक्षकार को सुनने के पश्चात् और, अभियुक्त या उसके अधिवक्ता को सुनने के पश्चात्––

(1) एक आस्थगित दण्ड अधिरोपित करने की सिफारिश कर सकता है और अभियुक्त को परिवीक्षा पर निर्मुक्त कर सकता है, अथवा अभियुक्त पर दण्ड अधिरोपित कर सकता है और अभियुक्त को परिवीक्षा पर निर्मुक्त कर सकता है, या

(2) अभियुक्त को व्यथित पक्षकार को ऐसा मुआवजा देने का निदेश दे सकता है जो वह दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात् उपयुक्त समझे, या

(3) ऐसा उपयुक्त दण्ड अधिरोपित कर सकता है जो वह उचित समझे ।

9.18. **आवेदन का रद्द किया जाना**––आवेदन या तो आरम्भिक प्रक्रम पर ही रद्द किया जा सकता है अथवा लोक अभियोजक या व्यथित पक्षकार को सुनने के पश्चात् । यदि सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि अपराध की गंभीरता या ऐसी किन्हीं परिस्थितियों को, जो लोक अभियोजक या व्यथित पक्षकार द्वारा उसकी जानकारी में लाई जाएं, ध्यान में रखते हुए, मामला ऐसा नहीं है जिसमें वह अपनी शक्तियों का प्रयोग करे क्योंकि उससे घोर अन्याय हो सकता है अथवा वह ऐसा मामला है जिसका विचारण होना चाहिए अथवा ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे आरोपित अपराध अथवा, कोई अन्य अपराध बनता है तो वह आवेदन को, ऐसे कारणों को संक्षेप में दर्शाते हुए, रद्द कर सकता है ।

9.19. **यदि आवेदन रद्द नहीं किया जाता है तो अभिलेख मंगाना**––सक्षम प्राधिकारी को मामले से संबंधित अभिलेख को उस न्यायालय या कार्यालय से, जिसकी अभिरक्षा में वह है, मंगाने और अभिप्राप्त करने की अपेक्षा होगी ।

9.20. **आवेदन को रद्द करने का प्रभाव**––सक्षम प्राधिकारी द्वारा आवेदन रद्द किए जाने की बाबत पारित आदेश गोपनीय होगा और उसकी कोई प्रतिलिपि केवल अभियुक्त को दी जाएगी किसी अन्य को नहीं और अभियुक्त को भी तब दी जाएगी जब वह ऐसी वांछा करता है । अभियुक्त द्वारा ऐसा आवेदन करने या सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे रद्द करने के कारण नियमित विचारण में, जो उचित समय पर आरम्भ होगा, अभियुक्त के विरुद्ध कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा ।

9.21. **टिप्पणी**––यदि ऐसा आवेदन करने से, जिसे रद्द कर दिया जाता है, अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो वह स्कीम के लाभप्रद उपबंधों का आश्रय लेने से निवारित रहेगा । अतः इस आशय का उपबंध करना आवश्यक होगा कि आवेदन की, जो रद्द कर दिया गया है, या उसके

कारणों की, यदि कोई हों, कोई प्रति अभियुक्त को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति को उपलब्ध नहीं कराई जाएगी और यह बात कानूनी तौर पर उपबंधित की जानी चाहिए । यदि यह तथ्य, यदि मामला नियत विचारण के लिए आता है, मामले का विचारण करने वाले न्यायालय की जानकारी में आता है, तो उसका अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा । कानून में यह उपबंध भी किया जाएगा कि लोक अभियोजक या व्यथित पक्षकार इस तथ्य का विचारण न्यायालय में अथवा, विचारण न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील किए जाने की दशा में अपीली न्यायालय के समक्ष यह उल्लेख करने का हकदार नहीं होगा कि ऐसा आवेदन किया गया था या उसे रद्द किया गया था और यदि ऐसा कोई उल्लेख किया जाता है तो यह न्यायालय की अवमानना होगी और कम से कम सात दिन के कारावास के दण्ड से दण्डनीय होगी ।

9.22. **आवेदन पर सुनवाई**––आवेदन पर सुनवाई के समय अभियुक्त या उसके अभिवक्ता की, यदि कोई है, लोक अभियोजक और व्यथित पक्षकार की, यदि कोई है, परिवीक्षा पर निर्मुक्त किए जाने या दण्ड की मात्रा और/अथवा व्यथित पक्षकार को दिए जाने वाले मुआवजा की रकम की बाबत सुनवाई की जाएगी । सक्षम प्राधिकारी मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा आदेश देगा जो उसे उपयुक्त प्रतीत हो । वह किसी भी पक्षकार द्वारा प्रस्तुत किए गए तथ्यों को आदेश में प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकृत नहीं होगा किन्तु ऐसा आदेश पारित करेगा जिसमें उन कारणों का संक्षेप में उल्लेख रहेगा जिन्हें वह उपयुक्त समझे तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त आदेश देगा ।

9.23. **टिप्पणी**––सक्षम प्राधिकारी को अपने विवेक का प्रयोग सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखकर करना चाहिए और यदि उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह संबंधित पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत सभी तर्कों को उद्धृत करे और उनकी चर्चा करे मानो कि वह कोई निर्णय लिख रहा है तो यह बात उपयुक्त नहीं होगी । केवल उन संक्षिप्त कारणों का वर्णन पर्याप्त होगा जिन पर समुचित मामलों में विचार किया गया है ताकि स्कीम को उचित रूप से कार्यशील किया जा सके । तर्क भी केवल ऊपर उल्लिखित विषयों की बाबत दिया जाना चाहिए और उपर्युक्त परिधि तक ही सीमित रहनी चाहिए जिससे कि स्कीम का उद्देश्य नष्ट न हो । लोक अभियोजक की सुनवाई इसलिए की जानी चाहिए ताकि ऐसे सुसंगत पक्ष, जिन पर अभियोजन के दृष्टिकोण से विचार करना अपेक्षित है, सक्षम प्राधिकारी की जानकारी में उचित निष्पादन की दृष्टि से आ जाएं । इसी प्रकार से व्यथित पक्षकार को भी अपने दृष्टिकोण को उपदर्शित करने का अवसर न्यायोचित्य की दृष्टि से दिया जाना चाहिए जिससे कि उसे यह अनुभव हो कि उसने सभी सुसंगत बातों की और सक्षम प्राधिकारी का ध्यान आकर्षित किया है ।

9.24. **ऐसे मामलों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया जिनमें अपराधी परिवीक्षा अधिनियम (संक्षेप में "अधिनियम") और/अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के उपबंध लागू होते हैं**––ऐसे मामलों में जहां अधिनियम और/अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के फायदाप्रद उपबंध आवेदक को लागू होते हैं, वह यह उल्लेख करते हुए एक आवेदन करने का हकदार होगा कि वह दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने का इच्छुक है और यह प्रार्थना करता चाहता है कि उसे परिवीक्षा अधिनियम और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के अधीन फायदा दिया जाए । ऐसे मामलों में, लोक अभियोजक को और व्यथित पक्षकार को सुनने के पश्चात्, सक्षम प्राधिकारी संबंधित उपबंधों की पृष्ठभूमि में मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और उन उपबंधों में दी गई शर्तों के अनुरूप, उचित आदेश पारित करेगा । सक्षम प्राधिकारी को कानूनी तौर पर इस बात के लिए प्राधिकृत किया जा सकता है कि वह मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यदि उचित समझता है तो, समय बचाने के उद्देश्य से और अनावश्यक समझने वाली प्रक्रिया का त्याग करते हुए, परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट की अध्यपेक्षा को छोड़ सकता है । उन मामलों में जहां सक्षम प्राधिकारी को यह प्रतीत होता है कि परिवीक्षा अधिनियम और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 को ध्यान में रखते हुए तथा मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मामला ऐसा नहीं है जिसमें उक्त उपबंधों का लाभ प्रदान किया जाए या ऐसा करना विधिपूर्ण नहीं है तो दोषसिद्धि का कोई आदेश लेखबद्ध किए बिना ही संपूर्ण आवेदन को रद्द किया जा सकता है । आवेदन करने और उसे रद्द करने के परिणामों के संबंध में गोपनीयता की बाबत उपबंध, जिसका उल्लेख पैरा 9.22 और पैरा 9.23 में किया गया है, अस्वीकृति के ऐसे मामलों को भी लागू होगा ।

9.25. **टिप्पणी**––परिवीक्षा अधिनियम और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 में समाविष्ट उपबंध ऐसे उदार उपबंध हैं जिनका उद्देश्य समस्त समुदाय को लाभ पहुंचाना है और, ऐसे मामलों में, जहां ठोस कारावास की सजा देने का परिणाम विपरीत होगा, समुदाय और अपराधी दोनों के ही सुधार को ध्यान में रखते हुए मानवीय उपचार करना है । जैसा कि परिवीक्षा अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन में तथा न्यायालय के कई मामलों के कई निर्णयों में भी दर्शाया गया है––

(1) अपराधी के सुधार और पुनर्स्थापन पर, यह मानकर कि वह समाज का एक उपयोगी और स्वआश्रित सदस्य है और कारावास के जीवन के दुष्परिणामों का उसे शिकार नहीं बनाया जाना चाहिए, दिन-प्रतिदिन जोर बढ़ता जा रहा है;

(2) दोषसिद्धि और परिवीक्षा अधिकारी के माध्यम से अपराधी के अधीक्षण के परिणामस्वरूप सुधार हो सकता है और अपराधी समुदाय का एक उपयोगी

सदस्य बन सकता है तथा भविष्य में उसे समाज विरोधी व्यवहार में निमग्न होने से परिविरत किया जा सकता है;

(3) अनेक अपराधी आभ्यासिक या खतरनाक अपराधी नहीं होते, अपितु कमजोर चरित्र वाले होते हैं जो लोभ का शिकार हो जाते हैं अथवा दुर्भाग्यवश पुलिस और न्यायालय की कार्रवाई का विषय बन जाते हैं। अतः, इस बात की आवश्यकता है कि भविष्य में उन्हें दायित्वपूर्ण नागरिकों के समान व्यवहार करने का अवसर प्रदान किया जाए ।

(4) दोषी को कठोर अपराधियों की संगति से और गहरे जल में डूबने और गंभीर अपराध करने तथा भविष्य में अपराधों की जघन्य पद्धतियों को अपनाने तथा कारावास का दण्ड भोगने का कलंक लगने से और समाज में अपना सम्मान खोने से बचाव होता है ।

(5) कारावास भोगने के दण्ड की अपेक्षा परिवीक्षा पर छोड़ने की प्रक्रिया को अपनाने के परिणामस्वरूप कारावास पर भार को कम किया जा सकता है जहां पहले ही बहुत भीड़ लगी हुई है तथा समुदाय को उन लोगों की देखभाल पर व्यय करने से बचाया जा सकता है जिन्होंने विगत काल में समुदाय को नुकसान पहुंचाया है तथा जो समुदाय के लिए नुकसान पहुंचाने वाले मार्ग पर प्रवेश कर सकते हैं;

(6) जो व्यक्ति एक बार कारावास चला जाता है वह अन्य अपराध के लिए पुनः कारावास जाने को बुरा नहीं समझेगा क्योंकि समुदाय में उसके चरित्र और हैसियत को जो हानि होनी थी वह तो पहले ही हो चुकी है और एक बार कालिख लग जाने पर उसकी सामाजिक छवि कालिखपूर्ण ही बनी रहेगी ।

अतः न्यायालय एक जागरूक मार्ग को अपनाएंगे और इन उपबंधों का फायदा ऐसे दोषियों को प्रदान करेंगे जो इन उदार उपबंधों का फायदा लेना चाहते हैं । किन्तु जो स्थिति इस समय है, वह सर्वविदित है और इन उपबंधों के प्रशासन से संबंधित व्यक्तियों तथा न्यायपालिका और वकील संघों के सदस्यों के साक्षात्कार के दौरान यह बात सामने आई है कि इन उपबंधों का लाभ बहुत कम लिया जाता है। यह भी सर्वविदित है कि बहुत ही कम लोग इन उपबंधों का फायदा लेते हैं । इन उपबंधों का लाभ लेने और उन्हें लागू करने के प्रति जो उदासीनता है उसके लिए जो कारण संभवतः हैं उन्हें दूर करना कठिन नहीं है । ऐसा दोषी, जो समन मामले में दोष स्वीकार करने का अभिवाक करता है, इन उपबंधों का लाभ न्यायालय में उपस्थित होने के तुरंत पश्चात् ले सकता है । वह ऐसा करने के लिए तब तक आकर्षित नहीं होता जब तक कि परिवीक्षा पर मुक्त किए जाने की उसकी प्रार्थना सफल होने की संभावना न हो । यदि वह दोष को स्वीकार करने का अभिवाक नहीं करता तो वह इन उपबंधों का आश्रय केवल एक लम्बे विचारण के पश्चात् ही ले सकता है जिसका परिणाम दोषसिद्धि होता है । वह अपराधी जो दांडिक विचारण के हृदयविहीन करने वाले कष्टों को पहले ही भोग चुका है जिसमें समय, धन और श्रम तीनों ही विचारण की समाप्ति तक लगाने पड़ते हैं, शायद ही इन उपबंधों का लाभ लेने के लिए तब उत्सुक हो जब विचारण का अंतिम परिणाम दोषसिद्धि के रूप में होता हो । वह तब तक पर्याप्त रकम किसी विधिवेत्ता की सेवाओं को प्राप्त करने के मुकदमे के खर्च के रूप में कर चुका होगा और अपने अधिवक्ता को उसके कार्यालय में जाकर उसे जानकारी देने के संबंध में अनेकों बार आने-जाने में, तथा न्यायालय में अनेकों बार उपस्थित होने में पर्याप्त समय व्यतीत कर चुका होगा और उसे घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ी होगी और समय-समय पर उसका मामला स्थगित हुआ होगा । इस सारी कार्रवाई के दौरान उसने अनेक श्रम, समय, श्रम दिन का नुकसान किया होगा । विचारण समाप्त हो जाने पर, कुछ साक्षियों के अनुपलब्ध होने के कारण अथवा साक्षी द्वारा घटना की तारीख और साक्ष्य देने की तारीख के बीच एक लम्बी अवधि बीत जाने के कारण साक्षी द्वारा एक समान मेल खाने वाला ब्यौरा देने में असफल रहने के कारण अथवा अभियोजन की ओर से कोई तकनीकी कमी हो जाने के कारण, वह वास्तव में उस अपराध का दोषी होने पर भी, जिसका आरोप उस पर लगाया गया हो, गुणावगुण पर विचार किए बिना मुक्त हो सकता था । यदि उसे दोषसिद्ध पाया जाता तो भी वह अपील में पुनरीक्षण न्यायालय में न्यायालय के हाथ निर्मुक्त होने की आशा कर सकता था । इतनी लम्बी अवधि तक कष्ट भोगने के पश्चात् उसे अपील में या पुनरीक्षण आवेदन को डालने में कुछ और समय देना बुरा नहीं लगता । यदि दोषसिद्धि की अंततः पुष्टि कर दी जाती है (आंकड़ों से यह प्रतीत होता है कि दोषसिद्धि का अनुपात बीस प्रतिशत से संभवतः कम है), तो वह कम से कम छोटी सजा ही पा सकता है । इन परिस्थितियों में, अधिनियम के उपर्युक्त उपबंधों का आश्रय लेने के लिए बहुत ही कम उत्साह रह जाता है । तथापि, यदि उसे इस बात का विकल्प प्राप्त है कि वह इन उपबंधों का फायदा लेने के लिए इस स्कीम के अंतर्गत, प्रारंभिक चरण में ही इन उपबंधों का फायदा ले सकता है, जब तक कि उसने धन, समय और अपनी शक्ति के साधनों का व्यय नहीं किया है, तब तक वह इन लाभप्रद उपबंधों के फायदों को समझने की बेहतर स्थिति में होगा । अतः यह वांछनीय है कि दोषी को एक ऐसा सुनियोजित आवेदन करने के लिए समर्थ बनाया जाए जिसमें दोष स्वीकार करने का अभिवाक करने की प्रार्थना को स्वीकार करने तथा परिवीक्षा आदि पर निर्मुक्त करने की प्रार्थना उपर्युक्त उपबंधों के मूल उद्देश्यों के अनुसार की गई हो। तथापि, सक्षम प्राधिकारी को स्वयं कानून द्वारा इस बात के लिए प्राधिकृत किया जाना चाहिए कि वह परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट मांगने की अध्यपेक्षा का त्याग कर सकता है यदि सक्षम प्राधिकारी यह समझता है कि वह मामला ऐसा है जिसमें समय बचाने की दृष्टि से उचित मामलों में ऐसी

अध्यपेक्षा को परित्याग करने की दृष्टि से वह मामला ठीक है । इस प्रकार से, उस मामले में दंडादेश किए जाने के कारण समुदाय का प्रयोजन भी पूरा हो जाएगा और न्याय का ध्वज भी खड़ा रहेगा । इसी प्रकार से अपराधी को सफाई देने का अवसर प्रदान करने का प्रयोजन भी पूरा हो जाएगा । अतः, ऊपर दर्शाए गए के अनुसार इस निमित्त उपबंध किया जाना चाहिए कि सभी संबंधित व्यक्तियों को लाभ प्राप्त होगा । यदि सक्षम प्राधिकारी का यह मत है कि अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए अथवा उपबंधों में सम्मिलित परिस्थीतिओं को ध्यान में रखते हुए अथवा मामले की विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वह मामला ऐसा उचित मामला नहीं है जिसमें शक्तियों का प्रयोग किया जाए तो सक्षम प्राधिकारी दोष स्वीकार करने का अभिवाक करने के लिए और दोषसिद्धि का आदेश लेखबद्ध किए जाने तथा दोषी को परिवीक्षा पर निर्मुक्त किए जाने का आवेदन अस्वीकृत कर देगा और यह निदेश देगा कि मामले का विचारण नियमित न्यायालय द्वारा नियमित रीति से किया जाएगा और दोषी को विचारण की प्रक्रिया से गुजरना होगा । इससे, इस हालत में न तो अभियोजन पर और न अभियुक्त पर ही कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा क्योंकि आवेदन करने की बात गोपनीय रह जाएगी और इस प्रकार कानून द्वारा यह प्रतिषिद्ध होगा कि विचारण करने वाला न्यायालय इस तथ्य का उल्लेख न करे अथवा विचारण के परिणाम तक पहुंचने में इस तथ्य पर ध्यान नहीं दे और मामले का निष्पादन विधि या गुणावगुण के आधार पर तथा अभिलेख पर आए साक्ष्य के आधार पर करे ।

9·26. अभिवाक-न्यायाधीश उसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 में विहित की गई है और जहां तक व्यवहार्य हो वह उचित भावना से प्रेरित होगा तथा परिवीक्षा पर निर्मुक्त करने की प्रार्थना को अस्वीकृत करने के कारणों को लेखबद्ध उसी प्रकार से करेगा जिसका उल्लेख दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 में किया गया है ।

9·27. उन अपराधों से, जिनका किया जाना अधिकथित है और जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के अधीन शमनीय हैं, उद्भूत मामलों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया— विश्वबहन दास बनाम गोपेत चन्द्र हजारिका तथा अन्य (एफ आई आर 1967 उ. न्या. 895) में उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित की गई विधि के अनुसार, शमनीय अपराधों के संबंध में धारा 320 में विधान मंडल द्वारा अपनाई गई नीति यह है कि अपराधों के कतिपय प्रवर्गों की दशा में (जिनका उल्लेख धारा 320 में किया गया है), जहां जनसाधारण के हितों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है, परिवादकर्ता को उस पक्षकार के साथ, जिसके विरुद्ध परिवाद किया गया है, समझौता करने की अनुमति होनी चाहिए । ऐसा प्रतीत होगा कि धारा 320 की उपधारा (2) के अधीन सारणी का संबंध उन अपराधों से है जो समुदाय पर दुष्प्रभाव नहीं डालते और वह न्यायालय, जिसके समक्ष अभियोजन लंबित है, उन्हें परिशमित करने की अनुमति प्रदान कर सकता है । किन्तु शमनीय अपराधों को भी परिवादकर्ता अनेक कारणों से परिशमित नहीं करता, जैसे, या तो वह बदले की भावना रखता है या यह चाहता है कि वह अभियोजन के तंत्र का उपयोग करके क्षमा मंगवा ले या धनीय क्षतिपूर्ति या अन्य लाभ प्राप्त कर ले । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि स्वयं विधान मंडल ने इन अपराधों को ऐसा अपराध माना है जिनमें किए गए दोष का, अपराधी को कारावास का दंड दिए बिना, किंतु परिवादकर्ता की सहमति से, उपचार किया जा सकता है और जिनके बारे में यह समझा जाता है कि यदि उपधारा (1) के अधीन सूचीबद्ध अपराधों का शमन किया जाता है तो समुदाय के हित पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा और समुदाय के हित पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा यदि उपधारा (2) के अधीन सारणी में सूचीबद्ध किए गए अपराधों को न्यायालय स्वयं ऐसा समझता है कि उनमें मामलों की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपराध का शमन करने की अनुमति प्रदान की जा सकती है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि दोषी को तथा समुदाय को, परिवादकर्ता और दोषी का धन, समय और शक्ति व्यय कराकर, विचारण के कष्टों को भोगने के लिए बाध्य किया जाए यदि न्यायालय स्वयं, दोषी को एक समुचित अर्जी, उस परिवादकर्ता को जो अपनी बदले की भावना से या उससे हुई क्षति के कारण, जिन पर वह विजय नहीं पा सका हो, अपराध का परिशमन करने से इन्कार कर सकता है, धनीय क्षतिपूर्ति के रूप में संदाय करने के लिए निदेश देकर पर्याप्त रूप से उपचार कर सकता है । निःसंदेह ऐसे मामलों में, दोषी न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग कराने में केवल तब समर्थ हो सकता है जब वह दोष स्वीकार करने का अभिवाक करने के लिए और दोषसिद्धि का आदेश स्वीकार करने के लिए तैयार हो । सक्षम प्राधिकारी अपराध की गंभीरता को और, जहां जहां व्यक्ति को या सम्पत्ति को क्षति हुई हो, क्षति की गंभीरता को तथा अभियुक्त की भुगतान करने की सामर्थ्य को भी और दूसरी ओर लोक अभियोजक, दोषी, परिवादकर्ता या व्यथित पक्षकार द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों को भी, ध्यान में रखेगा । सक्षम प्राधिकारी तत्पश्चात् जुर्माने का या कारावास का दंडादेश देगा और साथ ही यह निदेश भी देगा कि यदि दोषी सक्षम प्राधिकारी द्वारा अवधारित की गई क्षतिपूर्ति की रकम को ऐसे प्राधिकारी द्वारा विहित समय के भीतर, जिसकी अवधि आदेश की तारीख से प्रारंभ होकर छह मास से अधिक नहीं होगी, न्यायालय में जमा करा देता है तो कारावास का दंड निलंबित रहेगा । यदि दोषी प्रतिकर की रकम जमा करने में चूक करेगा तो वह उस पर अधिरोपित कारावास की सजा भोगेगा किंतु यदि प्रतिकर को अपराध के शिकार व्यक्ति या व्यथित पक्षकार को, सक्षम प्राधिकारी के निदेशानुसार, दिए जाने के लिए जमा कर देता है तो निलंबित दंडादेश निष्पादित नहीं किया जाएगा । ऐसे उपबंध से परिवादी या शिकार व्यक्ति या व्यथित पक्षकार को दिए जाने के लिए

आदेश की गई प्रतिकर की रकम प्राप्त करने से वंचित होने से बचाया जा सकेगा और सक्षम प्राधिकारी द्वारा अभिनिर्णीत प्रतिकर उसके हकदार व्यक्ति द्वारा किसी न्यायालय में किसी अन्य कार्यवाही का आश्रय लिए बिना वसूल किया जा सकेगा । यह उपबंध भी किया जा सकता है कि यदि परिवादी (व्यथित पक्षकार) और दोषी अपराध का शमन करने के लिए सहमत हैं तो कार्यवाहियों को ऐसी सुलह को लेखबद्ध करके पर्यवसित किया जा सकता है और दोषी को रिहा किया जा सकता है । यदि इजाजत की आवश्यकता हो और सक्षम प्राधिकारी की यह राय हो कि इजाजत मंजूर की जानी चाहिए तो इस निमित्त उपयुक्त आदेश दिया जा सकता है ।

9.28. **उन मामलों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया जहां उस अपराध के लिए, जिसका दोषी द्वारा किया जाना अभिकथित है, न्यूनतम दंड का उपबंध किया गया हो**---यदि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा स्कीम का फायदा लेने के लिए आवेदन किया जाता है जो ऐसे अपराध से आरोपित है जिसके संबंध में विधान मंडल ने न्यूनतम दंड का उपबंध किया है और सक्षम प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि वह ऐसा मामला नहीं है जिसमें लोकहित में यह अपेक्षित हो कि आवेदन को संक्षिप्त रूप से ही रद्द कर दिया जाए तो सक्षम प्राधिकारी, सुनवाई की तारीख नियत करने के लिए प्रक्रिया का अनुसरण करने और लोक अभियोजक तथा व्यथित पक्षकार को सूचित करने के पश्चात्, जैसा कि पूर्वतर उल्लेख किया गया है, दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक को स्वीकार कर सकेगा और दोषसिद्धि का आदेश लेखबद्ध कर सकेगा तथा संबंधित अपराध के लिए कानून में उपबंधित कारावास की न्यूनतम अवधि के आधे के बराबर सजा अधिरोपित कर सकेगा ।

9.29. टिप्पणी---यह बात निःसंदेह सत्य है कि विधान मंडल इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ही न्यूनतम दंड का उपबंध करेगा कि विधान मंडल उस अपराध को बहुत गंभीर मानता है और यह सुनिश्चित करने का इच्छुक है कि न्यायालय द्वारा न्यूनतम दंड अवश्य दिया जाना चाहिए क्योंकि न्यूनतम दंड देने से अपेक्षित प्रतिरोधी और दोषात्मक प्रभाव पैदा हो सकेगा । किंतु उन मामलों में भी, जहां न्यूनतम दंड का उपबंध है, दोषसिद्धियों का अनुपात इस तथ्य के कारण बहुत कम है कि कभी तो साक्ष्य नष्ट कर दिया जाता है, कभी कोई तकनीकी कमी निकल आती है और कभी अभियोजन की ओर से कई मामलों में शिथिलता बरती जाती है । तथापि, यदि, स्कीम का आश्रय लेकर कोई दोषी इस कारण से दोष स्वीकार करने का अभिवाक करता है कि वह पश्चाताप की भावना से प्रेरित है और अपना सुधार करना चाहता है अथवा वह इतना ईमानदार और स्पष्ट है कि इस आशा से दोष स्वीकार करना चाहता है कि समाज उसके साथ उस उदारता से और विवेक से पेश आएगा, जो ऐसे व्यक्ति के प्रति हो सकता है जो ईमानदारी से अपना दोष स्वीकार करता है और पश्चाताप की भावना से प्रेरित है न कि उस व्यक्ति के समान जो अपनी धन-शक्ति के अथवा मुकदमेबाजी की कठिनाई को सहन करने की शक्ति के कारण इस बात के होते हुए भी मुकदमा लड़ने में विश्वास रखता है कि अपराध करने के तथ्य से वह अनभिज्ञ नहीं है । ऐसे ईमानदार व्यक्ति के साथ जो अपना सुधार करना चाहता है और ऐसे व्यक्ति के साथ जो अपना अपराध समझते हुए भी मुकदमा लड़ना चाहता है तथा समुदाय को जो क्षति हुई है, प्रति समान व्यवहार करने का अर्थ यह होगा कि असमानों के साथ समानता का व्यवहार किया जा रहा है । यह बात अनुचित और पक्षपातपूर्ण है । ऐसी दशा में, ईमानदार व्यक्ति भी रियायती उपचार देने की इस उदार स्कीम का लाभ उठाने के प्रति निरुत्साहित हो जाएगा । इन परिस्थितियों में, यह बात समाज के समग्र हित में होगी कि उस व्यक्ति को, जो ईमानदारी के साथ अपना दोष स्वीकार करना चाहता है और कारावास में दंड भोगकर अपना सुधार करना चाहता है, उसके प्रति अनुकूल रवैया अपना कर, ऐसा करने में समर्थ बनाया जाए । अतः, यदि सक्षम प्राधिकारी को सुसंगत कानून द्वारा विहित न्यूनतम दंड के आधे के बराबर कारावास का दंड अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत किया जाए तो उससे स्कीम कारगर हो सकेगी और इसके उचित और अनुकूल परिणाम प्राप्त हो सकेंगे और इससे विधि का महत्व भी सुरक्षित रहेगा तथा एक ईमानदार व्यक्ति के प्रति दयाभावपूर्ण व्यवहार भी हो सकेगा । किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ऐसा करने के लिए सक्षम प्राधिकारी को सशक्त बनाने का काननी उपबंध इस उददेश्य से करना पड़ेगा कि सुसंगत विधि में विहित किए गए न्यूनतम दंड के उपबंध का उल्लंघन न हो । यह उल्लेख किया जा सकता है कि जब तक किसी ऐसे अपराध के दोषी व्यक्ति को, जिसे समाज गंभीर समझता है और यह चाहता है कि उसके लिए न्यूनतम कारावास का दंड दिया जाए, जो वास्तव में कारावास नहीं भोगता और उसके परिणामस्वरूप उसकी ख्याति की हानि नहीं होती और उस पर कलंक नहीं लगता और उसका अपमान नहीं होता, चाहे वह विहित अवधि की सजा, उदाहरण के लिए, एक वर्ष की सजा भोगे अथवा छह मास की रियायती अवधि की सजा भोगे, तो इस बात से शायद ही कोई अंतर पड़ेगा । क्योंकि ऐसा करने से विधि के प्रतिरोधी प्रभाव तथा दंड के प्रयोजन की पूर्ति समाज के हित तथा विधान-मंडल की इच्छा के साथ कोई समझौता किए बिना हो जाएगी । इस निमित्त यह सिफारिश हम इसी दृष्टिकोण से कर रहे हैं और यह आशा करते हैं कि उपर्युक्त पृष्ठभूमि में और सिफारिश के पीछे छिपी हुई भावना को ध्यान में रखकर इसकी सही सराहना की जाएगी ।

9.30. **उस धारा को, जिसके अधीन आरोप लगाया गया है, किसी छोटे अपराध का गठन करने वाली धारा में परिवर्तित करने की शक्ति**---सक्षम प्राधिकारी को उस अपराध से, जिसके लिए दोषी को आरोप-पत्र में या सुसंगत दस्तावेजों या मामले के कागजात में, अधिरोपित किया गया है, कम गंभीर अपराध के लिए दोषसिद्धि लेखबद्ध करने की शक्ति होगी यदि ऐसे आरोप-पत्र का परिशीलन करने के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि वे तथ्य, जिससे अभिकथित अपराध बनता है, और उसके समर्थन में सामग्री, तथा साफ तौर पर प्रकट होने वाले तथ्यों से भी, किसी कम गंभीर अपराध का गठन होता है ।

9.31. टिप्पणी---ऐसा उपबंध करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि प्रायः अभियोजन पक्ष उस अपराध से अधिक गंभीर अपराध के कठोर उपबंधों का उल्लेख करता है जो अभिलेख से प्रकट होने वाले तथ्यों से और परिस्थितियों से किया गया प्रकट होता है और दोषी के सर मढ़े गए कार्य और उनके समर्थन में सामग्री को मोटे तौर पर स्वीकार कर लिया जाता है । अभियोजन की यह इच्छा रहती है कि अपराध को ऐसे उपबंधों के अधीन ले आया जाए जिनके लिए कठोर दंड का उपबंध किया गया है और यह बात प्रायः अभियोजन पक्ष के मस्तिष्क पर छायी रहती है और कुछ हद तक स्वीकार करने योग्य भी है भले ही इसका अनुमोदन न किया जाए । अभियोजन पक्ष अनुचित रूप से यह कह सकता है कि यह निर्णय करना न्यायालय का काम है कि दोषी ने जो कार्य किए हैं उनसे उस अपराध की अपेक्षा, जिसका अभिलेख में उस पर आरोप लगाया गया है, कम गंभीर अपराध बनता है । औचित्य की दृष्टि से और इस दृष्टि से भी कि स्कीम का क्रियान्वयन उचित रूप से हो, यह अपेक्षित है कि उस न्यायिक अधिकारी से, जिसे सक्षम प्राधिकारी अभिहित किया गया है, इस शक्ति का प्रयोग करते हुए उचित रीति से कार्य करने के लिए सशक्त बनाया जाए । निःसंदेह, उससे यह आशा की जाएगी कि वह अभिलेख पर रखी हुई सामग्री का अपना यह समाधान करने के लिए गहराई और सावधानी से परीक्षण करे कि दोषी व्यक्ति आराम से न छूट जाए और इस शक्ति का आश्रय लेकर कोई अनुचित लाभ प्राप्त न कर ले । क्योंकि अंतिम राय उस सक्षम प्राधिकारी को बनानी होगी जो बृहत ज्ञान, अनुभव और विशेषज्ञता के शस्त्रों से सुसज्जित है और जिसे अभियोजन पक्ष की टिप्पणियों की सहायता और दोषी तथा व्यथित पक्षकार की सहायता भी प्राप्त है, और इस बात को पर्याप्त रूप से सुनिश्चित किया जा सकता है कि इस शक्ति का किसी अनुचित रूप से दुरुपयोग नहीं किया जाएगा बल्कि इसका प्रयोग न्यायपूर्ण और उचित रीति से तथा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार किया जाएगा और अपेक्षित वास्तविक न्याय का प्रोन्नयन होगा और उद्देश्य की प्राप्ति होगी ।

9.32. **उन मामलों से, जिनमें अपराधी परिवीक्षा अधिनियम या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 या समनीय अपराधों से संबंधित उपबंध लागू नहीं हैं, भिन्न मामलों में (उन मामलों को छोड़कर जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराधों से संबंधित हैं) कारावास की सजा के मुख्य दंडादेश की मात्रा का निर्धारण करने के लिए मार्गनिर्देश**---हमने उचित स्थानों पर जिन मार्गनिर्देशों की चर्चा की है वे इस प्रश्न से संबंधित हैं कि सक्षम प्राधिकारी उन विषयों में किस प्रकार से शक्तियों का प्रयोग करे जहां सुसंगत उपबंधों के अधीन परिवीक्षा पर निर्मुक्त करने की शक्ति अथवा दोषी होने का निर्णय लेखबद्ध करने की और कारावास की सजा का मुख्य दंडादेश न देकर व्यथित पक्षकार को प्रतिकर का सीधे ही संदाय करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है । तथापि, उन मामलों में (उन्हें छोड़कर जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराधों से संबंधित हैं) जहां सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि, अपराध की गंभीरता और मामले की परिस्थितियों को समग्र रूप से ध्यान में रखते हुए, न्याय की यह मांग है कि किसी दोषी को, जो रियायती उपचार के लिए स्कीम का आश्रय लेकर दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक करता है, कारावास की सजा का मुख्य दंडादेश देना न्याय के उद्देश्य के लिए आवश्यक है, उचित मार्गनिर्देश तैयार करने होंगे ।

9.33. इस पक्ष पर विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि उस पृष्ठभूमि की परीक्षा की जाए जिसमें यह स्कीम तैयार की जा रही है । भारत में विद्यमान स्थिति के संदर्भ में ऐसे अनेक वजनदार कारण हैं जिनसे अभिवाक सौदे की स्कीम को, जो संयुक्त राज्य अमरीका में प्रचलित है, ग्रहण करना वांछनीय नहीं समझा गया है । इससे एक व्यावहारिक कठिनाई उत्पन्न हो गई है जिसका समाधान करना होगा । अमरीका वाली प्रणाली में, दोषी उस स्थिति में न्यायालय पहुंचेगा जहां अभियोजन रियायती उपचार के लिए, और रियायती उपचार के विस्तार के संबंध में, सहमत है । दूसरे शब्दों में, जब दोषी न्यायालय के समक्ष अभिवाक सौदे की प्रक्रिया का आश्रय लेता है वहां उसे उस रियायती उपचार के विस्तार के बारे में संसूचित कर दिया जाता है जो उसे उसके आवेदन को न्यायालय द्वारा स्वीकार किए जाने की दशा में दी जा सकती है । यदि आवेदन को रद्द कर दिया जाता है तो उसका कोई नुकसान नहीं होता । किन्तु यदि उसका आवेदन स्वीकार हो जाता है तो उसे इस बात का निश्चय हो जाता है कि दोष स्वीकार करने का अभिवाक करने पर उसे उस सीमा तक रियायत प्राप्त होगी । जब तक किसी दोषी को कोई लाभ मिलने का उचित अवसर नहीं होगा तब तक वह स्कीम का लाभ उठाने के लिए अग्रसर होने में समर्थ नहीं हो सकेगा । वह केवल तभी प्रेरित होगा यदि उसे पहले से ही लाभ का पता लग जाए या इस स्थिति का पता लग जाए कि उसका कोई नुकसान नहीं होगा । दूसरे शब्दों में, यदि उसके पास केवल यही विकल्प है कि वह कोई लाभ न प्राप्त करने की जोखिम लेकर भी, और संभवतः अधिकतम सजा भोगने की संभावना होते हुए भी, विचारण के दावे के अपने अधिकार का त्याग कर दे तो इस बात की संभावना नहीं है कि कोई भी दोषी स्कीम का

लाभ लेना चाहेगा और ऐसी स्कीम कानून की पुस्तक में मृत रूप में ही बनी रहेगी । यह सत्य है कि यदि उसे इस बात का विकल्प दिया जाए कि यदि प्रस्तावित दंड उसे स्वीकार न हो तो वह आवेदन को वापस ले सकता है तो प्रत्येक दोषी लाभ प्राप्त होने की आशा में ऐसे अवसर का लाभ लेना चाहेगा और सक्षम प्राधिकारी के पास इतना अधिक काम बढ़ जाएगा कि उसका परिणाम शून्य हो जाए । किन्तु यह बात भी है कि यदि दोषी के लिए कोई आकर्षण की बात नहीं है बल्कि दूसरी ओर उसे एक अज्ञात संकट का भय है तो कोई भी दोषी स्कीम का लाभ नहीं लेना चाहेगा । क्योंकि अभियोजन के साथ सौदा करने की बात, जिसके कारण दोषी स्कीम का लाभ उठाने के प्रति आकर्षित होता है, भारतीय संदर्भ में जोखिम पूर्ण समझी गई है, अतः कोई अन्य मार्ग तैयार करना होगा जिससे कि यह स्कीम उचित रूप से आकर्षक अथवा कार्य योग्य बन सके ।

वह फार्मूला जिसे न्यायोचित, सही, उचित और स्वीकार्य माना जा सकता है यह हो सकता है कि स्कीम में यह उपबंध किया जाए कि यदि सक्षम प्राधिकारी रियायती उपचार के लिए किए गए आवेदन को ग्रहण करता है वह ऐसा दंड अधिरोपित कर सकेगा जो वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित समझे, किन्तु इस शर्त पर कि कारावास का जो दंड दिया जाएगा वह संबंधित अपराध के लिए कानून द्वारा उपबंधित अधिकतम अवधि के आधे से अधिक नहीं होगा । यदि इस फार्मूले को किसी ऐसे मामले में अपनाया जाता है जहां अधिकतम कारावास दस वर्ष है तो सक्षम प्राधिकारी को अधिक से अधिक पांच वर्ष तक का दंड देने का विकल्प होगा । ऐसी दशा में, स्कीम को सभी अपराधों पर, उन्हें छोड़कर जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय हैं, लागू किया जा सकता है । यदि गंभीर अपराधों को, जैसे कि हत्या, जिसके लिए दंड मृत्यु या आजीवन कारावास है, अपवर्जित कर दिया जाता है तो स्कीम को बिना किसी शर्त के स्वीकार करने पर विचार किया जा सकता है ।

9.34. **अधिरोपित किए जाने वाले दंड की बाबत मार्ग-निर्देश**---उन अपराधों से संबंधित मामले जिनमें दोषी को ऐसे अपराध से आरोपित किया गया हो जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय हैं किन्तु दोषी या दोषियों द्वारा इस निश्चित आवेदन किए जाने पर सक्षम प्राधिकारी का अभिलेख को परिशीलन से यह समाधान हो जाता है कि यदि दोषी द्वारा किए गए कार्यों को और अभियोजन पक्ष के समर्थन में सामग्री को ज्यों का त्यों स्वीकार भी कर लिया जाता है तब भी अपराध ऐसा है जिसे धारा 304 (1) या धारा 304 (2) या धारा 326 के अंतर्गत रखा जाना चाहिए---इस प्रवर्ग के मामलों में सक्षम प्राधिकारी का कार्य अत्यंत कठिन और नाजुक होगा । ऐसे मामलों में ही जनसाधारण के प्रशासन में विश्वास हिलने की बाबत आशंका की एक विशिष्ट प्रकार से सामने आने की संभावना है । अनुभव से यह दृष्टिगोचर होता है कि कतिपय मामलों में पुलिस द्वारा लेखबद्ध किए गए बयान और एकत्रित की गई सामग्री को प्रत्यक्ष रूप से देखने पर यह प्रतीत होगा कि वह एक ऐसा मामला है :---

(1) जो व्यक्तिगत प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग का है, या

(2) जिसमें दोषी ने एक गंभीर और अचानक प्रलोभन के अंतर्गत कार्य किया है, अथवा

(3) जिसमें मृत्यु उतावलेपन या उपेक्षापूर्ण कार्य का अथवा दुर्घटना का परिणाम है न कि वह एक ऐसा मामला है जो हत्या की कोटि में आने वाला आपराधिक मानववध का मामला है ।

उदाहरण के लिए, अपराधी के घर पर कोई ऐसी घटना घटित हुई हो जो उसके घर के सामने एकत्रित या उसके घर को चारों ओर से घेरने वाली हिंसात्मक आक्रामक भीड़ के कारण घटी हो जिस भीड़ के सदस्य खतरनाक हथियारों से सुसज्जित हों और धमकियां दे रहे हों । ऐसी स्थिति में, यदि अपराधी अपनी व्यक्तिगत प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए उचित शक्ति का प्रयोग करता है । यद्यपि वह शक्ति प्रयोग अनुज्ञात सीमाओं से तकनीकी रूप से अधिक हो सकता है किन्तु यह कार्य ऐसे उपबंध के अधीन आ सकता है जो कम गंभीर या छोटा अपराध है । अथवा ऐसा मामला भी हो सकता है जहां गरमागर्मी में अपराधी किसी ऐसे व्यक्ति पर लात या मुक्का चलाता है जिसका कि कोई महत्वपूर्ण अंग रोगग्रस्त है । ऐसे मामलों में यह बात फिजूल होगी कि दोषी व्यक्ति को एक कठिन विचारण की प्रक्रिया से गुजरना पड़े जिसके परिणामस्वरूप अपराधी को अत्यंत अपरिहार्य कष्ट भोगना पड़े भले ही वह एक छोटे अपराध का दोष स्वीकार करने का अभिवाक करने के लिए तैयार हो । अतः, अपराधी को स्कीम के अधीन तंत्र का लाभ लेने की अनुमति दी जा सकती है यदि अपराधी छोटे अपराध के दोष को स्वीकार करने या ऐसा अभिवाक करने के लिए तैयार है जिसे न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में ठीक समझता है । ऐसी स्थिति में, सक्षम प्राधिकारी, लोक अभियोजक, व्यथित पक्षकार अथवा शिकार व्यक्ति के संबंधी को और दोषी को सुनने के पश्चात्, इस बारे में पूर्णतया संतुष्ट हो जाने पर कि दोषी द्वारा जिस कार्य को किए जाने की बात है और उसके समर्थन में जो सामग्री है यदि उसे उसी रूप में स्वीकार कर लिया जाता है तो उससे कोई छोटा अपराध बनेगा, दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक को स्वीकार कर सकता है । किन्तु इस स्थिति में भी न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (1) के अंतर्गत आने वाले अपराधों की दशा में कम से कम चार वर्ष का कठोर कारावास का दंड, धारा 304 (2) के अन्तर्गत आने वाले अपराधों की दशा में तीन वर्ष का कठोर कारावास का दंड और धारा 326 के अंतर्गत आने वाले अपराध की दशा में कम से कम डेढ़ वर्ष का कठोर कारावास का दंड दे सकता है जिससे कि विधि का सम्मान बना रहे, सार्वजनिक विश्वास बना रहे और दोषी व्यक्ति आसानी से बच कर न निकल जाए ।

इस प्रवर्ग के अंतर्गत आने वाले मामलों की बाबत एक समान फार्मूला अपनाना उचित और ठीक होगा जिस फार्मूले की सिफारिश उन अपराधों की बाबत की गई है जिन्हें अपराधी परिवीक्षा अधिनियम और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के उपबंध लागू होते हैं, अर्थात्, यह कि अभियुक्त किसी छोटे अपराध को स्वीकार करने का अभिवाक करने के लिए आवेदन कर सकता है और सक्षम प्राधिकारी को या तो उसे स्वीकार करने की और उचित दंड देने की अथवा उसे इस उपबंध को लागू करते हुए रद्द करने की शक्ति होगी कि आवेदन करने का ऐसा कोई परिणाम नहीं होगा जो कि स्कीम का आश्रय लेने वाले दोषी के प्रतिकूल हो जाए तथा आवेदन करने के तथ्य को गोपनीय रखा जाएगा और उसका विचारण में कोई लाभ नहीं लिया जाएगा । यह उपबंध भी किया जा सकता है कि वह अभियोजक, जो सक्षम प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित होता है, नियमित विचारण में अथवा विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश से की गई अपील में खड़े होने निरर्हित होगा ।

आयोग की यह राय है कि उपर्युक्त के संबंध में उपबंध सार्वजनिक विचार-विमर्श करने तथा परिणाम पर पूरे प्रकार से विचार करने के पश्चात् तब किया जाना चाहिए जब इस प्रकार से सम्यक् विचार किए जाने पर यह स्वीकार्य हो । यदि इस समय इसे उचित न समझा जाए तो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराधों को इस समय स्कीम के परिक्षेत्र से पूरी तरह अपवर्जित किया जा सकता है । जब तक इस पर लोक चर्चा नहीं हो जाती तब तक आयोग इस बारे में कोई निश्चित सिफारिश करने की स्थिति में नहीं है यद्यपि आयोग प्रथमदृष्टया इसके पक्ष में है ।

9.35. **कतिपय प्रवर्गों को स्कीम में से पूर्णतया अपवर्जित करना अथवा पहले चरण में अपवर्जित करना**---नीचे विनिर्दिष्ट अपराधों के प्रवर्गों को स्कीम के परिक्षेत्र में से पूर्णतया अथवा कम से कम प्रथम चरण में अपवर्जित किया जा सकता है :---

(क) दोबारा अपराध करने वाले, अर्थात्, ऐसे व्यक्ति जिन्हें उसी उपबंध के अंतर्गत किसी अपराध के लिए गत समय में कभी भी सिद्धदोष ठहराया गया है;

(ख) ऐसे व्यक्ति जिन्होंने गत समय में कभी भी एक बार स्कीम का आश्रय लिया है;

(ग) ऐसे व्यक्ति जो गैर-तकनीकी सामाजिक-आर्थिक अपराध से आरोपित हैं;

(घ) ऐसे व्यक्ति जो स्त्रियों और बालकों से संबंधित अपराधों से आरोपित हैं ।

9.36. **टिप्पणी**---(क) सुरक्षा के कारणों से और दुरुपयोग रोकने की दृष्टि से यह उचित होगा कि स्कीम को "प्रथम दोषी" को ही लागू किया जाए ताकि इस आशंका के लिए कोई गुंजाइश न रहे कि जो व्यक्ति रियायती उपचार का लाभ प्राप्त करते हैं वे अपने इस विश्वास के कारण उसी कार्य में संलग्न हो सकते हैं कि उन्हें रियायत पुनः प्राप्त हो जाएगी ।

(ख) इसी कारण से यह उचित होगा । कि उन व्यक्तियों को, जिन्होंने एक बार रियायती उपचार का लाभ प्राप्त कर लिया है, भविष्य में उसी प्रकार का लाभ पुनः प्राप्त करने से अपवर्जित किया जाए;

(ग) सार्वजनिक राय सामाजिक-आर्थिक अपराधों पर, जो कि गैर तकनीकी प्रकृति के होते हैं, स्कीम का विस्तार करने के पूर्णतया विरुद्ध है । यह एक नाजुक मामला है और व्यवहार-कुशलता की यह मांग है कि इन अपराधों को स्कीम के परिक्षेत्र से अपवर्जित रखा जाए । तथापि, इस स्कीम को, अन्य क्षेत्रों में इस स्कीम के कार्यकरण से प्राप्त अनुभव के प्रकाश में और इस संदर्भ में सार्वजनिक चर्चा के प्रकाश में, भविष्य में ऐसे अपराधों को भी लागू किया जा सकता है । इस क्षेत्र में स्कीम का विस्तार करने का विकल्प खुला रखा जा सकता है क्योंकि स्कीम संभवतः इस शर्त के साथ लागू की जा सकती है कि दोषियों को कम से कम मुख्य सजा, उदाहरण के लिए, छह मास अथवा एक वर्ष या एक विनिर्दिष्ट अवधि की सजा, अवश्य दी जाएगी । एकबार दोषी को कारावास के दंड का कष्ट भोगने दिया जाता है तो इससे दोषी स्वयं भी और उन्हीं जैसे विचार वाले अन्य व्यक्ति भी भयभीत होंगे । यह बात नहीं है कि दोषी को यदि कारावास का दंड, जैसे कि छह मास की सजा दी जाती है तो वह अपराध पुनः करेगा किन्तु यदि वह लम्बी अवधि के दंड के "दायित्वाधीन" होगा तो वह ऐसा नहीं करेगा । वास्तविकता यह है कि जब निम्नांकित का अनुपात 75 प्रतिशत से 90 प्रतिशत है तो अपराध करने का प्रलोभन तो बना ही हुआ है । दूसरी ओर, दोष स्वीकार करने के परिणामस्वरूप शीघ्र दंडादेश हो जाएगा और शीघ्र सजा हो जाएगी और सजा का प्रयोजन बेहतर तरीके से पूरा होगा । अतः यह वांछनीय है कि इस विकल्प को खुला रखा जाए और स्कीम का विस्तार भविष्य में ऐसे अपराधों पर भी उस परिणाम को ध्यान में रखते हुए किया जाए जो अन्य अपराधों के संबंध में स्कीम के कार्यकरण की बाबत निकलता है और सार्वजनिक चर्चा के प्रकाश में सामने आता है ।

(घ) यही तर्क समान रूप से स्त्रियों और बालकों से संबंधित अपराधों की बाबत लागू होगा और ऐसे अपराधों को इस समय स्कीम के परिक्षेत्र से बाहर रखा जा सकता है ।

उपर्युक्त रूप में मार्गनिर्देशों से यह प्रयोजन पूरा हो सकता है ।

9.37. **स्कीम का खण्डशवद्ध रीति से लागू किया जाना**---प्रारंभ में इसे सात वर्ष से कम अवधि के कारावास से दंडनीय अपराधों को लागू किया जा सकता है । दूसरे चरण में इसका

विस्तार सात वर्ष से अधिक अवधि के कारावास से दंडनीय अपराधों पर (किन्तु उन अपराधों को छोड़कर जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय हैं) किया जा सकता है । अपवर्जित प्रवर्ग के अपराधों पर इसका विस्तार दूसरे चरण में किया जा सकता है किन्तु यह तब जबकि प्रथम चरण में स्कीम का कार्यकरण संतोषजनक पाया जाता है और सार्वजनिक चर्चा के प्रकाश में और प्रथम चरण में प्राप्त अनुभव के प्रकाश में स्कीम ठीक उतरती है ।

9.38. **दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 का संशोधन करने की आवश्यकता**—दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 (1) के अधीन यह उपबंध है कि न्यायालय अधिरोपित जुर्माने में से ही प्रतिकर दे सकता है और धारा 357 (3) के अधीन प्रतिकर केवल तभी दिया जा सकता है जब जुर्माने से भिन्न सजा दी जाए। वर्तमान स्थिति के अनुसार, प्रतिकर ऐसे मामलों में नहीं दिया जा सकता जिनमें पक्षकार अपराध का शमन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के अधीन कर लेते हैं क्योंकि शमन प्राय: शमनीय मामलों में, विचारण प्रारंभ होने के पूर्व भी, पक्षकारों के बीच सहमति से हो जाता है । ऐसी परिस्थितियों में प्रतिकर देने की शर्त न्यायालय या सक्षम प्राधिकारी के आदेश में, दोषसिद्धि को लेखबद्ध किए बिना भी, सम्मिलित नहीं की जा सकती है । इसी प्रकार से जहां जुर्माने की सीमा निश्चित हो वहां और बड़ी रकम के प्रतिकर का आदेश नहीं दिया जा सकता । अत:, स्कीम को प्रभावशील बनाने के उद्देश्य से, यह आवश्यक है कि इस धारा का संशोधन किया जाए जिससे कि सक्षम प्राधिकारी दोष स्वीकार करने के अभिवाक के अभाव में भी व्यथित पक्षकार को प्रतिकर का सीधे ही संदाय करने में समर्थ हो सके भले ही जुर्माना अधिरोपित किया जाए या नहीं । यही कारण है कि यह सिफारिश की जा रही है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 का संशोधन किया जाए जिससे कि सक्षम प्राधिकारी को उन मामलों में भी, जहां दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जाती है और जहां जुर्माना अधिरोपित किया जाता है अथवा नहीं किया जाता है, प्रतिकर के संदाय का आदेश देने के लिए समर्थ बनाया जा सके, किन्तु यह तब जब कि अपराध का शमन, स्कीम के अधीन, न्यायालय या सक्षम प्राधिकारी के समक्ष किया जाता है ।

9.39. **"व्यथित" की परिभाषा**—इस अध्याय में अथवा इस रिपोर्ट में अन्यत्र जहां भी "व्यथित" पद आता है, उससे अपराध का शिकार कोई व्यक्ति, यदि वह जीवित है, अथवा यदि वह जीवित नहीं है तो उसका निकट संबंधी, अभिप्रेत है ।

9.40 अब स्कीम की मुख्य स्वीकारात्मक बातों पर प्रकाश डालने तथा तत्पश्चात् उचित निष्कर्ष निकालने और सिफारिशें करने का प्रस्ताव है ।

अध्याय 10

प्रस्तावित स्कीम उन आपत्तियों और आशंकाओं का निवारण किस प्रकार करती है जो उन व्यक्तियों के हृदय में हैं जिन्हें इस सिद्धांत की सफलता में संदेह है

10.1. इस रिपोर्ट में प्रतिपादित स्कीम बुनियादी तौर पर अन्यत्र प्रचलित अभिवाक-सौदे की स्कीमों से पांच बातों में भिन्न है, अर्थात् :—

(1) स्कीम का आश्रय लेने के प्रयोजन के लिए लोक अभियोजक और अभियुक्त के बीच कोई संपर्क नहीं होगा। यह कदम केवल अभियुक्त द्वारा उठाया जाएगा और केवल वही आवेदन कर सकेगा । लोक अभियोजक की कोई भूमिका नहीं होगी ।

(2) रियायती उपचार प्रदान करने का विनिश्चय सात वर्ष से कम के कारावास से दंडनीय अपराधों की बाबत, पूर्णतया अभिवाक् न्यायाधीश के रूप में कार्य करने वाले न्यायिक अधिकारी द्वारा या सात वर्ष या उससे अधिक के कारावास से दंडनीय अपराधों की बाबत ऐसे अधिकरण द्वारा, जिसमें उच्च न्यायालय के दो सेवानिवृत्त न्यायाधीश होंगे, किया जाएगा और ऐसा विनिश्चय लोक अभियोजक और अभियुक्त के बीच किसी सौदे-बाजी का परिणाम नहीं होगा ।

(3) न्यायिक अधिकारियों के साथ कोई सौदा नहीं होगा और जो एक बार आवेदन करता है उसे वापस लेने की अनुज्ञा नहीं दी जाएगी तथा अभियुक्त को यह ज्ञात नहीं होगा कि न्यायिक अधिकारी क्या करेंगे । वह केवल व्यपदेशन करेगा और ऐसी रियायत देने की सिफारिश करेगा जैसी उसकी राय में समुचित हो ।

(4) न्यायिक अधिकारी ही पूर्णरूपेण निर्णायक होगा तथा अभियोजन की ओर से लुकाछिपी या बलपूर्वक या अनुचित प्रलोभन की कोई जोखिम नहीं होगी ।

(5) व्यथित पक्षकार और लोक अभियोजक को सुनवाई का और अपने विचार प्रस्तुत करने का अधिकार होगा ।

10.2. कई विशिष्ट बातों की दृष्टि से, स्कीम की सफलता के बारे में जो आशंकाएं हैं वे, जैसे कि नीचे चर्चा की जा रही है, स्पष्ट हो जाएंगी :—

(1) अन्यत्र जो अभिवाक सौदे की स्कीम प्रचलित है वहां सहबीत अभियोजक और अभियुक्त के बीच विचार-विमर्श तथा सौदे-बाजी का परिणाम होती है । प्रस्तावित स्कीम में, इस बात को, जिसे अधिक वांछनीय नहीं समझा गया है, दूर रखा गया है । सौदे-बाजी की प्रक्रिया को जन-साधारण संदेह की दृष्टि से देखता है और इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जन-साधारण का विश्वास कम हो जाता है । इसके कारण बातचीत करने से संबंधित अभियोजक की विश्वसनीयता और ईमानदारी पर भी संदेह की गुंजाइश रहती है । प्रस्तावित स्कीम में इस आलोचना का निराकरण किया गया है क्योंकि उसमें लोक अभियोजक की कोई भूमिका नहीं रखी गई है । स्कीम में सौदे-बाजी की किसी भी प्रक्रिया का स्थान नहीं है । प्रस्तावित स्कीम में यह परिकल्पना की गई है कि स्कीम के अधीन रियायती उपचार की शक्तियों का प्रयोग करने का प्रारंभ अपराधी की ओर से होना चाहिए और आवेदन सीधे ही अभिवाक न्यायाधीश या इस निमित्त गठित अधिकरण को संबोधित होना चाहिए जो कि इस बात का अभिनिश्चय करेगा कि आवेदन को ग्रहण किया जाए या नहीं तथा यदि उसे ग्रहण करने में विनिश्चय किया जाता है तो अभिवाक् न्यायाधीश या संबंधित अधिकरण यह विनिश्चय करेगा कि सभी सुसंगत परिस्थितियों, मार्गनिर्देशों और कानूनी उपबंधों को ध्यान में रखते हुए कैसा रियायती उपचार प्रदान किया जाए ।

(2) स्कीम जिस रूप में अन्यत्र प्रचलित है उसमें अनुचित प्रलोभन दिए जाने की जोखिम है क्योंकि वहां अभियोजक तथा अभियुक्त के बीच ऐसा करार है कि दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् किया जाएगा । प्रस्तावित स्कीम में, जिसमें पहला कदम अभियुक्त द्वारा ही उठाया जाता है इस जोखिम से पर्याप्त बचाव रखा गया है । छुपे तौर पर धमकी या अनुचित प्रलोभन दिए जाने की संभावना का भी निराकरण किया गया है क्योंकि प्रस्तावित स्कीम में यह परिकल्पना की गई है कि सक्षम प्राधिकारी खुले न्यायालय में जांच करेगा, जहां किसी पुलिस अधिकारी, अथवा ऐसे व्यक्ति को, जिसके बारे में अभियुक्त आपत्ति करता है, उपस्थित रहने की अनुमति नहीं दी जाएगी, और यह सुनिश्चित करेगा

कि आवेदन बिना किसी प्रलोभन या धमकी से स्वेच्छापूर्वक किया गया है या नहीं । इस प्रकार से, प्रलोभन या धमकी से बचाव के लिए एक सुरक्षा तंत्र स्कीम में सम्मिलित है ।

(3) प्रस्तावित पद्धति में इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि निर्दोष व्यक्ति द्वारा दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने की जोखिम न रहे क्योंकि न्यायिक अधिकारी अभिलेख पर जो सामग्री है उस पर ध्यान देगा और यदि ऐसी कोई प्रथमदृष्टया सामग्री नहीं है जिससे यह अपराध बनता हो जिससे कि आवेदक आरोपित है तो वह आवेदन को रद्द कर देगा ।

(4) प्रस्तावित स्कीम में ऐसी किसी अवांछित सौदेबाजी की बात नहीं है जो आपत्तिजनक हो क्योंकि अभियुक्त सक्षम प्राधिकारी के समक्ष केवल अभिवाक् कर सकता है और अपना विचार रख सकता है किन्तु सौदे-बाजी नहीं कर सकता क्योंकि उसे आवेदन वापस लेने की शक्ति उस दशा में नहीं है जहां न्यायालय, मामले की परिस्थितियों में ऐसा कोई उदार दृष्टिकोण अपनाना उचित नहीं समझता है ।

(5) इस बात की भी जोखिम नहीं है कि कोई दोषी व्यक्ति असम्यक् प्रकार की उदार सजा पा कर बच निकलेगा क्योंकि सक्षम प्राधिकारी ही (जिसका गठन सात वर्ष या उससे अधिक कारावास से दंडनीय अपराधों के संबंध में उच्च न्यायालय के दो सेवानिवृत्त न्यायाधिशों से किया जाएगा) यह सुनिश्चित करेगा कि मामले की परिस्थितियों में उचित दंड क्या होगा और सक्षम प्राधिकारी स्कीम के अधीन कोई आदेश पारित करने से पूर्व व्यथित पक्षकार को सुनेगा। इसके अतिरिक्त, जैसा कि अध्याय 9 में विस्तारपूर्वक कहा गया है, मार्गनिर्देशों में यह उल्लेख किया गया है कि विनिर्दिष्ट अपराधों के संबंध में न्यूनतम अवधि का कारावास अधिरोपित किया जाएगा ।

10.3. अतः, यह बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है कि प्रस्तावित स्कीम में अमेरिका में प्रचलित पद्धति के सभी आपत्तिपूर्ण लक्षणों को दूर कर दिया गया है और इसे निर्बंध होकर क्रियान्वित किया जा सकता है तथा इस मार्ग को अपनाने की सफलता या वांछनीयता की बाबत किसी भी आशंका का कोई कारण नहीं है ।

अध्याय 11

निष्कर्ष और सिफारिशें

निष्कर्ष

1

आयोग की सुविचारित राय है कि एक स्कीम जो "स्वेच्छापूर्वक दोष स्वीकार करने का अभिवाक करने वाले अभियुक्त द्वारा रियायती उपचार के लिए की गई प्रार्थना की मंजूरी की स्कीम" कहलाएगी, भारत की दांडिक न्याय व्यवस्था में आरंभ की जानी चाहिए और इस स्कीम को कानूनी मान्यता और प्राधिकारिता प्रदान करने के लिए कानून बनाया जाना चाहिए ।

2

स्कीम की आरम्भ करने की आवश्यकता ऐसी स्थिति में अनिवार्य हो गई है जहां किसी दांडिक मामले के विचारण में, जिसका परिणाम निम्नलिखित हो, मामूली मामले में भी (जिसमें बारह हजार रुपए, चार हजार रुपए और दो हजार रुपए जैसी रकम के दुर्विनियोग का आरोप हो) 33 वर्ष तक लग जाते हैं और सरकारी खजाने[1] का एक करोड़ रुपया तक व्यय हो जाता है और बदले में समाज को कोई फायदा प्राप्त नहीं होता और ऐसी स्थिति में, जैसा कि इंडियन एक्सप्रेस में 16-8-89 को रिपोर्ट किया गया है, जहां न्यायालय बम्बई जैसे नगर में जहां 1988 में बलात्कार के 124 मामले दर्ज किए गए थे उनमें से केवल एक का निपटारा किया गया था और जहां 1989 के प्रथम छह मासों में 67 मामले दर्ज किए गए थे किन्तु एक का भी निपटारा नहीं किया गया था[2], यह स्कीम आरंभ करना अनिवार्य हो जाता है।

3

स्कीम को प्रारंभ करने के लिए अनेक औचित्य हैं, उदाहरण के लिए—

(1) यह उचित और ठीक नहीं है कि किसी अभियुक्त को, जिसमें पश्चाताप की भावना है और जो अपना सुधार करना चाहता है अथवा ऐसा अभियुक्त जो इतना ईमानदार और स्पष्टवादी है कि इस आशा में दोष स्वीकार करना चाहता है कि समाज उसे दया और विचार की भावना से प्रेरित होकर जुर्माना देने में समर्थ बनाएगा और उस अपराधी को उस अभियुक्त के समान माना जाना चाहिए जो कि पर्याप्त समय और धन का व्यय कर के विचारण किए जाने का दावा करता है ।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के तथा अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के, जिनका इस समय व्यावहारिक दृष्टि से कोई उपयोग नहीं किया जा रहा है, सुधार उपबंधों में जान डालना वांछनीय है ।

(3) इससे अभियुक्त को, जिसे विचारण की प्रतीक्षा में विचाराधीन कैदी के रूप में रहना होगा, तथा अन्य अभियुक्तों को भी, जिन पर भविष्य में होने वाले विचारण की तलवार वर्षों तक लटकी रहेगी, शीघ्र विचारण का तथा निम्नलिखित फायदों का लाभ प्राप्त होने में सहायता मिलेगी, जैसे—

(क) अनिश्चय की समाप्ति,

(ख) मुकदमेबाजी के खर्चों की बचत,

(ग) चिंता से बचाव,

(घ) अपना भविष्य जानने की संभावना और कारावास की सजा भोगने की संभावना के भय के दिन, जो कि उसके जीवन और भविष्य को नष्ट कर देगा, एक नया जीवन आरंभ करने की संभावना,

(ङ) स्थगन की प्रत्येक तिथि को वकील के कार्यालय और न्यायालय के अपरिहार्य रूप से चक्कर काटने से बचाव ।

(4) इससे, लोक हित पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न्यायालय के मुकदमों में, जिनकी संख्या पहले ही अत्यधिक बढ़ चुकी है, उनके कमरतोड़ बजन में कमी ।

(5) कारागारों में भीड़ में कमी ।

(6) संयुक्त राज्य अमरीका में कुल दोषसिद्धियों की लगभग 75 प्रतिशत "अभिवाक-सौदे" का परिणाम होती है ।

(7) वर्तमान स्कीम के अंतर्गत, यदि अधिक नहीं तो 75 प्रतिशत से 90 प्रतिशत तक, दांडिक मामलों का परिणाम निर्मुक्ति होती है ।

सिफारिशें

1

अतः आयोग यह सिफारिश करता है कि ऐसे दोषियों के लिए, जो किसी अभिवाक सौदे के बिना या ऐसी सौदे-बाजी के बिना जिस की चर्चा अध्याय 9 में की गई है, स्वेच्छापूर्वक दोष स्वीकार करने का अभिवाक करने के इच्छुक हों, रियायती उपचार

प्रदान करने के लिए एक स्कीम, दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में एक अध्याय जोड़कर, कानूनी रूप से आरम्भ की जाए (स्कीम की मुख्य बातें नीचे दी जा रही हैं)

स्कीम की मुख्य बातें—

(1) स्कीम का आश्रय केवल दोषी ही ले सकेगा (पैरा 9.6 देखिए) ।

(2) अभियोजन अभिकरण अथवा उसके अधिवक्ता के साथ अभिवाक-सौदे के लिए कोई विचार-विमर्श नहीं होगा और स्कीम का आश्रय लेने के संबंध में सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रार्थना करने के मामले में उनकी भूमिका नहीं होगी (पैरा 9.7 देखिए) ।

(3) सक्षम प्राधिकारी, संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा, सात वर्ष तक के कारावास से दंडनीय सीमाओं का विचारण करने के लिए सक्षम कार्यरत न्यायाधीशों में से पदाभिहित एक "अभिवाक न्यायाधीश" होगा और सात वर्ष या उससे अधिक के कारावास से दण्डनीय अपराधों के संबंध में, उच्च न्यायालय के दो सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की एक खंड-पीठ, जिन्हें संबंधित राज्य के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा इस निमित्त नामनिर्दिष्ट किया जाएगा, सक्षम प्राधिकारी होगी (पैरा 9.3 और 9.4 देखिए) ।

(4) आवेदन को सक्षम प्राधिकारी केवल तब ही ग्रहण करेगा जब वह स्कीम में विनिर्दिष्ट रूप से यह सुनिश्चित करने के पश्चात् अपना समाधान कर ले कि आवेदन स्वेच्छापूर्वक और समझ-बूझकर किया गया है (पैरा 9.15 और 9.16 देखिए) ।

(5) सक्षम प्राधिकारी आवेदन की सुनवाई व्यथित पक्षकार और लोक अभियोजक अथवा सहायक लोक अभियोजक की उपस्थिति में तथा उन्हें संक्षिप्त सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात् करेगा (पैरा 9.17 और 9.18 देखिए) ।

(6) सक्षम प्राधिकारी को एक निश्चित अवधि का कारावास, और/अथवा जुर्माना अधिरोपित करने और/अथवा आवेदक अभियुक्त को यह निदेश देने की शक्ति होगी कि वह, उन अपराधों की बाबत जो न्यायालय की इजाजत से या उसके बिना शमनीय हैं, अपराध का शमन करने के लिए व्यथित पक्षकार को प्रतिकर प्रदान करे (पैरा 9.17 (iii) और 9.27 देखिए) ।

(7) सक्षम प्राधिकारी विनिर्दिष्ट अपराधों की बाबत एक न्यूनतम अवधि का कारावास, जैसे कि, छह मास या एक वर्ष, अधिनिर्णीत करेगा यदि स्कीम का इस निमित्त विस्तार, स्कीम के उपबंध के प्रकाश में, किया जाता है (पैरा 9.2, 9.36(ग) देखिए) ।

(8) सक्षम प्राधिकारी वहां सुसंगत उपबंध द्वारा उपबंधित अधिकतम दण्ड के आधे से अधिक अवधि का कारावास अधिनिर्णीत कर सकेगा जहां सक्षम प्राधिकारी को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के अधीन अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के अधीन मार्ग निर्देशों के अनुसार, परिवीक्षा पर निर्मुक्त करने की शक्ति का प्रयोग करने की प्रार्थना नहीं की जाती है (पैरा 9.24, 9.32 और 9.33 देखिए) ।

(9) प्रथम चरण में, प्रयोगात्मक उपाय के रूप में, स्कीम को उन अपराधों पर लागू किया जा सकता है जो सात वर्ष से कम के कारावास अथवा/और जुर्माने से दंडनीय हैं, यदि केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, दोनों ही, उनके द्वारा जारी की गई और भारत के राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा ऐसा संकल्प करते हैं (पैरा 8.4 और 9.37 देखिए) ।

(10) इस स्कीम को सात वर्ष तथा उससे अधिक के कारावास से दण्डनीय अपराधों पर लागू किया जा सकेगा किन्तु ऐसा विस्तारण सात वर्ष से कम कारावास से दण्डनीय अपराधों के बारे में स्कीम को लागू करने के परिणामों का उचित मूल्यांकन और निर्धारण करने के पश्चात किया जा सकेगा (पैरा 8.4, 8.6 और 8.7 देखिए) ।

(स्कीम की रूपरेखा का विस्तार अध्याय 9 में दिया गया है)।

2

स्कीम को गैर तकनीकी प्रकृति के समाजिक-आर्थिक अपराधों पर प्रथम चरण में लागू नहीं किया जा सकता है, परन्तु, बाद में इसे इस शर्त के साथ लागू किया जा सकेगा कि, यदि लोक चर्चा के प्रकाश में यह उचित समझा जाए तो, दोषी को कम से कम छह मास या एक वर्ष, या ऐसी अवधि के, जैसी विनिर्दिष्ट की जाए, न्यूनतम कारावास का दण्ड भोगना होगा ।

टिप्पणी—सिफारिश करने के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं :—

(1) शीघ्र दी गई सजा का लोक प्रयोजन की दृष्टि से अच्छा परिणाम निकलता है न कि उस सजा का जो कि अनेकों वर्षों की दोनों पक्षों को थका देने वाली मुकदमेबाजी का परिणाम होती है और जिसके कारण जनसाधारण का विश्वास समाप्त हो जाता है ।

(2) एक बार दोषी को अपराध को रोकने की दृष्टि से किसी अवधि के कारावास का मुख्य दण्ड दे दिया जाता है तो इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि उसे एक वर्ष की सजा दी जाती है या लम्बी अवधि की सजा दी जाती है (पैरा 9.35 देखिए) ।

3

स्कीम को स्त्रियों और बालकों से संबंधित अपराधों पर, जिनके अंतर्गत बलात्कार, वधू को जलाने, दहेज संबंधी मृत्युएं, दहेज की मांग और उसे स्वीकार करना आदि के अपराध भी हैं, लागू नहीं किया जाएगा क्योंकि ये अपराध समाज के इन वर्गों के प्रति अन्याय और कष्ट के लम्बे इतिहास के संदर्भ में समाज द्वारा आक्रोश की दृष्टि से देखे जाते हैं [पैरा 9.35(घ) देखिए] ।

4

इसके अतिरिक्त, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 357(1) के अंतर्गत, कोई न्यायालय प्रतिकर का अधिनिर्णय केवल अधिरोपित जुर्माने में से ही कर सकता है और, धारा 357(3) के अंतर्गत, ऐसा प्रतिकर केवल तभी अधिनिर्णीत किया जा सकता है जब जुर्माने से भिन्न दण्डादेश दिया जाए । इस समय जो स्थिति है उसके अनुसार प्रतिकर उन मामलों में नहीं दिया जा सकता जिनमें पक्षकार, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के अधीन, अपराध का शमन कर लेते हैं क्योंकि ऐसा शमन प्रायः शमनीय मामलों में पक्षकारों के बीच विचारण आरम्भ होने से पूर्व ही किए गए करार के आधार पर होता है । ऐसी परिस्थितियों में प्रतिकर के संदाय की शर्त न्यायालय अथवा सक्षम प्राधिकारी के आदेश में तब तक सम्मिलित नहीं की जा सकती जब तक कि दोषसिद्धि का आदेश न दिया जाए । इसी प्रकार से, उस मामले में और बड़ी रकम के प्रतिकर का आदेश नहीं किया जा सकता जहां जुर्माने की कोई परिसीमा है । अतः स्कीम को प्रभावी करने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि इस धारा का संशोधन किया जाए जिससे कि सक्षम प्राधिकारी, दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक न होने की दशा में भी और वहां भी जहां जुर्माना अधिरोपित किया जाता है या नहीं किया जाता, व्यथित पक्षकार को प्रतिकर का सीधे ही संदाय करने में समर्थ हो सके । यही कारण है कि यह सिफारिश की जा रही है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 का संशोधन किया जाए जिससे कि सक्षम प्राधिकारी को उन मामलों में भी प्रतिकर का संदाय करने का आदेश देने के लिए सक्षम बनाया जा सके जहां दोषसिद्धि का आदेश नहीं दिया गया है और जुर्माना अधिरोपित किया गया है या नहीं किया गया है, यदि स्कीम के अधीन अपराध का शमन न्यायालय या सक्षम प्राधिकारी के समक्ष किया जाता है (पैरा 9.38 देखिए) ।

5

स्कीम को केवल प्रथम अपराधियों तक सीमित रखा जा सकता है [पैरा 9.35(क) और (ख) देखिए] ।

यह आशा की जाती है कि यदि इस रिपोर्ट के परिप्रेक्ष्य में, जितना संभव हो उतना शीघ्र समुचित विधिक उपाय किए जाते हैं तो इससे बकाया दांडिक मामलों के पहाड़ की चिंतापूर्ण समस्या का समाधान किया जा सकता है और इस समस्या का समाधान करने में देर नहीं की जानी चाहिए । हम तदनुसार सिफारिश करते हैं ।

ह.
(एम. पी. ठक्कर)
अध्यक्ष

ह.	ह.
(वाई. वी. अन्जनेयलु)	(पी. एम. बक्शी)
सदस्य	सदस्य
ह.	ह.
(महेश चन्द)	(जी. वी. जी. कृष्णामूर्ति)
सदस्य	सदस्य सचिव

नई दिल्ली, 22 अगस्त, 1991

टिप्पण और निर्देश

अध्याय 2

1. ए आई आर 1979 उ. न्या. 1360 ।
2. ए आई आर 1979 उ. न्या. पृष्ठ 1361, पैरा 1 ।
3. ए आई आर 1979 उ. न्या. 1360, पृष्ठ 1361, पैरा 2 ।
4. ए आई आर 1979 उ. न्या. 1360, पृष्ठ 1364, पैरा 5 ।
5. ए आई आर 1979 उ. न्या. 1377, पृष्ठ 1382, पैरा 8 ।
6. "दि हिन्दू" तारीख 20-12-1990, नई दिल्ली संस्करण देखें ।
7. "दि हिन्दू" तारीख 20-12-1990, नई दिल्ली संस्करण देखें ।

अध्याय 3

1. सूत अमरीकन ला-क्राइम एण्ड पनिशमेंट, पृष्ठ 168-169 ।
2. 287 यू. एस. 742-25 एल. एड. 2 सरा 747 ।
3. 404 यू एस 257 (1971) ।
4. 50 एल. एड. 2सरा 876, 878 ।
5. (1973) 412 यू एस 12 ।
6. 52 एल. एड. 2सरा 136 ।
7. (1977) 429 यू एस 545 ।
8. 94 एल. एड. 2सरा 405 ।

अध्याय 5

1. उपाबंध "ख" देखें ।

अध्याय 11

1. "दि हिन्दू", तारीख 20-12-1990, नई दिल्ली संस्करण देखें ।
2. "दि हिन्दू", तारीख 20-12-1990, नई दिल्ली संस्करण देखें ।

उपाबंध "क"

"अभिवाक-सौदे" के सिद्धांत को लागू करने की व्यावहारिकता

भारत के विधि आयोग ने उपर्युक्त विषय के अध्ययन का कार्य समस्त देश में प्रचलित दंड विधि के प्रशासन के क्षेत्र में व्याप्त स्थिति के संदर्भ में आरम्भ किया, अर्थात्:—

(1) न्यायालयों के पास कार्य की भरमार है । विचारण के लिए दांडिक मामले प्रतीक्षा कर रहे हैं और उनकी संख्या बहुत अधिक है ।

(2) दांडिक अपराधों के अभियुक्त व्यक्तियों की बहुत बड़ी संख्या है जो कि जमानत लेने में समर्थ नहीं हो सके हैं या जमानत देने में असमर्थ हैं, और उन्हें वर्षों से विचाराधीन बंदियों के रूप में कारागार में कष्ट भोगना पड़ रहा है ।

(3) अधिकांश मामलों की समाप्ति अंततः रिहाई में होती है और ऐसा होने पर भी न्यायालय का समय ऐसे मामलों के संबंध में अनेक वर्षों तक खिंचने वाले परीक्षण में लगता है ।

(4) अभियुक्त को विचाराधीन परीक्षण के कारण तथा संभावित सजा का वर्षों तक मानसिक कष्ट भोगना पड़ता है ।

(5) अभियुक्त को विधिक व्यय के रूप में पर्याप्त धन भी व्यय करना पड़ता है ।

(6) अभियुक्त को एक अनिश्चय की स्थिति में रहना पड़ता है तथा वह परीक्षण के पूरा होने की प्रतीक्षा में अनेक वर्षों तक जीवन में स्थिर होने में असमर्थ रहता है ।

(7) कारागारों में भीड़ है और सरकार के खजाने को इसके परिणामस्वरूप होने वाले आर्थिक भार का वहन करना पड़ता है ।

(8) विचाराधीन बंदियों के रूप में कारागार में रहने के दौरान अभियुक्त कठोर अपराधियों से प्रभावित होने की स्थिति में रहते हैं ।

2. उपर्युक्त पृष्ठ भूमि में "अभिवाक-सौदे" के सिद्धांत को दांडिक न्याय के प्रशासन में लागू करने की व्यावहारिकता की परीक्षा करना समीचीन है । यह जांच करने की आवश्यकता है कि इसे क्या केवल ऐसे अपराधों की प्रकृति के अनुसार सीमित रखा जाए या इसका विस्तार दंडादेश के क्षेत्र में भी किया जाए, जिसके अंतर्गत दोषसिद्ध व्यक्ति को, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 तथा 361 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, परिवीक्षा पर छोड़ा जाए ।

3. इस प्रयोजन के लिए, सुसंगत जानकारी एकत्रित करना तथा न्यायिक अधिकारियों और दांडिक मामलों के विचारण से संबद्ध वकील संघों के सदस्यों के विचारणों को जानना आवश्यक हो गया है । अतः, आपसे अनुरोध है कि आवश्यक जानकारी प्रदान करके, तथा निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर के रूप में अपने विचार प्रस्तुत करके, सहयोग प्रदान करने का कष्ट करें :—

(1) क्या आप समझते हैं कि "अभिवाक-सौदे" की कानूनी स्कीम को, उचित सुरक्षोपायों और मार्गनिर्देशों के साथ, सुरक्षित रूप से लागू किया जा सकता है ?

(2) आप की राय में ऐसी कौन सी त्रुटियां हो सकती हैं जिनसे बचना होगा और जिन त्रुटियों की आशंका है उन्हें दूर करने के लिए क्या रक्षोपाय हो सकते हैं ?

(3) कृपया अपने लम्बे अनुभव के आधार पर यह अनुमान लगाएं कि आपने जिन मामलों का विचारण किया है या निष्पादन किया है उनमें से कितने प्रतिशत का परिणाम गत एक वर्ष की अवधि में रिहाई में हुआ है ?

(4) (क) परिवाद, सुसंगत अभिलेख और कागजात अथवा सुपुर्दगी न्यायालय के अभिलेख का, यथास्थिति, विचारण न्यायालय में कार्य करने के संदर्भ में, क्या आप समझते हैं कि अनेक मामलों में न्यायालय उचित रूप से उस अपराध से, जिससे कि अभियुक्त आरोपित था, प्रथम सूचना का अनुशीलन करने के पश्चात् अभिवाक को स्वीकार कर सकता था ?

(ख) क्या आप गत एक वर्ष की अवधि में ऐसे मामलों की प्रतिशतता का मोटे तौर पर अनुमान प्रस्तुत कर सकते हैं ?

(5) (क) अपने लम्बे अनुभव के आधार पर क्या आप समझते हैं कि आपके द्वारा विचारित/निपटाए गए मामलों में से अनेक में, परिवाद या प्रथम सूचना या सुसंगत कागजातों और अभिलेखों के अनुशीलन मात्र से आपको ऐसा प्रतीत हुआ कि जो आरोप लगाए

गए थे उनसे प्रथम दृष्टया ऐसी परिस्थितियां प्रकट होती थीं जो दंडादेश के मामले में एक उदार दृष्टिकोण अपनाने की बात को उचित ठहरा सकती थीं ?

(ख) क्या आप समझते हैं कि यदि ऐसे मामलों में अभियुक्त को "अभिवाक् सौदे" का विकल्प प्राप्त होता तो वह, यदि उसके मस्तिष्क में कम दंड मिलने की संभावना रहती थी, वह दोष स्वीकार करने का अभिवाक करता ?

(6) जहां विधान-मंडल ने, उन कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, कम दंड आरोपित करने की शक्ति के अधीन रहते हुए, न्यूनतम दंड विहित किया है वहां क्या आप समझते हैं कि अभियुक्त ने दोष स्वीकार करने का अभिवाक् किया होता और यदि ऐसा अभिवाक् उसे उपलब्ध होता तो क्या अनेक मामलों में, वह उसे मुक्ति दिलाने वाली परिस्थितियों का लाभ प्राप्त करता ?

(7) क्या आपके विचार में ऐसे अनेक मामलों में जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 आकर्षित होती है, अभियुक्त, "अभिवाक्" उपलब्ध होने की स्थिति में, प्रारम्भ में ही दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करते और ऐसा अनुभव हुआ कि, मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय उसे, दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् के आधार पर, दोषसिद्धि को अभिलिखित करने पर भी, परिवीक्षा पर निर्मुक्त करने का विचार करता ?

(8) क्या आप सेशन न्यायालयों द्वारा विचार-योग्य बड़े अपराधों से संबंधित मामलों में, जिनके अंतर्गत मृत्यु या आजीवन कारावास के दंड के दायित्वाधीन अपराध भी हैं, अभिवाक् के सिद्धान्त का विस्तार करना समीचीन समझते हैं ?

(9) क्या आप गंभीर समाज विरोधी या आर्थिक अपराधों के कुछ प्रवर्गों को, अभिवाक् सौदे के सिद्धांत को लागू करने के प्रयोजन के लिए, अपवर्जित करना वांछनीय समझते हैं ? यदि ऐसा है तो कृपया उनके ब्यौरे दीजिए ।

(10) क्या 'दोषी होने का अभिवाक्' अभियुक्त द्वारा स्वेच्छापूर्वक किया जाना चाहिए ? आप ऐसी कौन सी पूर्वविधानियां यह सुनिश्चित करने के लिए प्रस्तावित करना चाहेंगे कि दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने के लिए अभियुक्त पर कोई बल-प्रयोग नहीं किया जाता या दबाव नहीं डाला जाता ?

(11) क्या आप समझते हैं कि अभिवाक्-सौदे के संबंध में विचारण से पूर्व बात-चीत अभिवाक् न्यायाधीश (विचारण न्यायाधीश से भिन्न) के समक्ष की जानी चाहिए ? अथवा, क्या आप समझते हैं कि इस विषय को विचारण न्यायाधीश द्वारा ही स्वयं निपटाया जा सकता है ?

(12) क्या आप समझते हैं कि अभिवाक्-सौदे की बात-चीत खुले न्यायालय में की जानी चाहिए अथवा न्यायाधीश के कक्ष में एकान्त में की जानी चाहिए ?

(13) क्या आप यह आवश्यक समझते हैं कि समस्त विचार-विमर्श और अभ्यावेदनों का पूरा अभिलेख तैयार किया जाए और जहां अभिवाक् को स्वीकार कर लिया जाता है वहां उसे विचारण पूर्व बात-चीत के दौरान सुरक्षित रखा जाए ?

(14) आप कौन से ऐसे सुरक्षोपायों का सुझाव देना चाहेंगे जिससे कि अभियोजन और अभियुक्त के बीच कोई अभिसंधि नहीं हो जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त आसानी से छूट जाए ?

(15) (क) क्या आप समझते हैं कि उस न्यायाधीश को, जिसके समक्ष अभिवाक्-सौदे की बातचीत की जाती है, एक अनावश्यक विवाद में उलझने के कारण कोई कष्टप्रद स्थिति होने की संभावना है ?

(ख) यदि हां, तो आप इस समस्या के समाधान के लिए कौन से सुरक्षोपाय सुझाना चाहेंगे ?

(16) क्या आप समझते हैं कि अभिवाक्-सौदा केवल प्रथम अपराध के संबंध में ही उपलब्ध होना चाहिए अथवा वह पश्चात्वर्ती अपराधों के संबंध में भी समान रूप से उपलब्ध होना चाहिए ?

(17) क्या आपकी विचार में इस भावना के कारण कि कोई व्यक्ति अभिवाक्-सौदे का लाभ लेकर आसानी से छूट निकलेगा, अपराधों की संख्या में वृद्धि होगी?

(18) क्या आपके विचार में अभिवाक्-सौदे की प्रणाली अपराधी के पुनर्स्थापन की प्रक्रिया में सहायता प्रदान करेगी ?

(19) क्या आप यह समझते हैं कि गंभीर अपराधों के प्रवर्गों में दिए जाने के लिए एक न्यूनतम मूल दण्ड का उपबंध किया जाना चाहिए ?

(20) क्या आप समझते हैं कि ऐसा उपबंध किया जाना चाहिए कि अपराध से पीड़ित व्यक्ति या उसके निकट संबंधी को अभिवाक् सौदे का विरोध करने का अवसर प्रदान किया जाए ? यदि अपराधी अभिवाक्-सौदे की बात-चीत के परिणामस्वरूप दोष स्वीकार

करने का अभिवाक् करता है तो क्या अपराध से पीड़ित व्यक्ति या उसके निकट संबंधी को यह अनुरोध करने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए कि अभिवाक्-सौदा करने के प्रस्ताव का अनुमोदन करने के लिए मामले को किसी उच्चतर न्यायालय के समक्ष निर्दिष्ट किया जाए ?

(21) क्या आपका यह विचार है कि सामाजिक-आर्थिक अपराधों में एक न्यूनतम मूल दण्ड विहित किया जाना चाहिए ?

(22) क्या आप इस विषय में कोई अन्य सुझाव देना चाहेंगे ?

मैट्रोपोलिटन सेशन न्यायाधीश और जिला तथा सेशन न्यायाधीशों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली आंकड़ेयुक्त जानकारी का प्रारूप

..... का न्यायालय

1. 31-12-1989 को लंबित दण्डिक विचारणों की संख्या ।

2. उपर्युक्त विचारण मामलों का, उन्हें फाइल करने के वर्ष के संदर्भ में, वर्गीकरण ।

3. उपर्युक्त विचारण मामलों का सुविधाजनक शीर्षकों के अंतर्गत वर्गीकरण, अर्थात् :—

   (क) मृत्यु या आजीवन कारावास के दण्ड से दायित्वाधीन अपराध;

   (ख) सात वर्ष या उससे अधिक के कारावास के दण्ड के दायित्वाधीन अपराध;

   (ग) सात वर्ष से कम के कारावास के दण्ड के दायित्वाधीन अपराध;

4. 31-12-1989 को लंबित दाण्डिक अपीलों की संख्या (वर्ष वार) ।

5. कलैण्डर वर्ष 1989 में निष्पादित मामलों की संख्या :

   (क) जिनका परिणाम सजा में हुआ है;

   (ख) जिनका परिणाम निम्नलिखित में हुआ है ।

6. उन मामलों की संख्या जिनमें दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 का फायदा 21 वर्ष और उससे अधिक आयु के अभियुक्तों को 1989 के कलैण्डर वर्ष के दौरान प्रदान किया गया ।

कलैंडर वर्ष 1988 और 89 के दौरान निष्पादित दांडिक मामलों (विचारणों) का विवरण

..... का न्यायालय

क्रम सं०	मामलों की संख्या	आरोपित अपराध	निर्मुक्त किए गए अभियुक्तों की संख्या	सिद्धदोष पाए गए अभियुक्तों की संख्या	वह अपराध जिसके लिए सिद्धदोष ठहराया गया	अधिरोपित दंड (नीचे टिप्पण 2 देखें)
1	2	3	4	5	6	7

टिप्पण : 1. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, आतंकवादी अधिनियम और मादक द्रव्य अधिनियम के अधीन मामलों को इस विवरण में सम्मिलित नहीं किया जाए ।

2. यदि किसी मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 या अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के अधीन फायदा अभियुक्त को प्रदान किया गया है तो उसका उल्लेख विवरण के स्तंभ 7 में किया जा सकता है ।

उपाबंध 'ख'

कनाडा के विधि सुधार आयोग द्वारा
कार्य पत्र 60 में की गई सिफारिशें

1. "समझौता अभिवाक्" पद की परिभाषा इस प्रकार की जानी चाहिए कि उसका अर्थ अभियुक्त द्वारा अभियोजन की यह सहमति होने के बदले में कि वह एक विशिष्ट प्रकार की कार्रवाई नहीं करेगा, दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने के लिए अभियुक्त द्वारा किया गया करार है ।

2. "अभिवाक् विचार-विमर्श" पद की यह परिभाषा की जानी चाहिए कि उससे ऐसा विचार-विमर्श अभिप्रेत है जिसके परिणामस्वरूप अभिवाक् समझौता होता है ।

3. (1) "अनुचित प्रलोभन" पद को इस प्रकार से परिभाषित किया जाना चाहिए कि उससे कोई ऐसा प्रलोभन अभिप्रेत है जो अनिवार्य रूप से अभियुक्त के अभिवाक् की सत्यता या दण्डादेश संबंधी शुद्धता को संदेह में डालता है, और इसके अंतर्गत निम्नलिखित आचरण भी है यदि उसका प्रयोग अभियुक्त को दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने के लिए प्रोत्साहित करने के प्रयोजन के लिए किया जाता है;

(क) कोई ऐसा आरोप लगाना जिसके बारे में यह विश्वास है कि वह सबूत योग्य तथ्यों से समर्थित नहीं है;

(ख) कोई ऐसा आरोप लगाना जो प्रायः ऐसे कार्य या लोप के साथ नहीं जोड़ा जा सकता जिसका दोष अभियुक्त पर लगाया गया है;

(ग) उपरोक्त पैरा (क) या (ख) में वर्णित प्रकार का आरोप लगाने की धमकी;

(घ) यह धमकी कि यदि अभियुक्त दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् नहीं करेगा तो उसके परिणामस्वरूप, अभियोजन के कहने पर उसे दण्ड से अधिक दण्ड मिलेगा जो सामान्यतया तत्समान ऐसे अभियुक्त पर अधिरोपित किया जाता जिसे दोषसिद्ध पाया जाता है और जिसने उस अपराध के दोष को स्वीकार करने का अभिवाक् नहीं किया होता जिससे वह आरोपित है;

(ङ) ऐसा कोई प्रलोभन, धमकी या वायदा जिसे पूरा करना ऐसे प्रलोभन आदि देने वाले के अधिकार में नहीं है;

(च) कोई तात्विक मिथ्या व्यपदेशन; और

(छ) अभियुक्त द्वारा अपराध से निरन्तर इन्कार के बावजूद उसे दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने के लिए किया गया कोई प्रयास ।

(2) "अनुचित प्रलोभन" पद को इस प्रकार से परिभाषित किया जाना चाहिए कि उससे यह स्पष्ट हो जाए कि उसका अर्थ है अभियुक्त को अभिवाक् समझौता करने के लिए प्रोत्साहित करना, जैसा कि सिफारिश 1 में परिभाषित है, स्वयं में अनुचित प्रलोभन नहीं है ।

4. (1) अभियोजक और अभियुक्त या अभियुक्त के परामर्शदाता को उसकी ओर से अभिवाक् विचार-विमर्श करने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए ।

(2) कोई भी न्यायिक अधिकारी जिसके समक्ष अभियुक्त से संबंधित कार्यवाहियां चल रही हैं या चलाई जाएंगी, अभिवाक विचार-विमर्श में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए ।

(3) भाग (2) में किसी बात के होते हुए भी, मुख्य न्यायाधिपति के लिए अथवा उस न्यायाधीश के लिए जिसे उसने अभियोजक और अभियुक्त के बीच अभिवाक् विचार-विमर्श प्रारम्भ करने और उसका सभापतित्व करने के लिए पदाभिहित किया है, इस बात की अनुज्ञा होनी चाहिए, परन्तु यह तब जब इस बात पर जोर दिया जाए कि अभियुक्त उस न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित नहीं होगा और अभिवाक् समझौता पूरा करने के लिए बाध्य नहीं होगा ।

(4) न्यायाधीश, सामान्य तौर पर, अभियोजन और अभियुक्त को अभिवाक् विचार-विमर्श में अंतर्निहित फायदों को समझा सकेगा और उन्हें ऐसा विचार-विमर्श करने का अवसर प्रदान कर सकेगा ।

5. अभियोजक, पुलिस अधिकारी या ऐसे प्रतिरक्षा परामर्शदाता अभियुक्त को कोई अनुचित प्रलोभन नहीं देंगे ।

6. ऐसा कोई न्यायिक अधिकारी, जिसके समक्ष अभियुक्त से संबंधित कार्यवाहियां चल रही हैं या चलाई जाएंगी, अभियुक्त को किसी अपराध स्वीकार करने का अभिवाक् करने के लिए प्रोत्साहित करने के प्रयोजन के लिए कोई प्रलोभन नहीं देगा ।

7. (1) यदि अभियुक्त ने परामर्शदाता रखा है तो अभियोजक अभियुक्त के परामर्शदाता की अनुपस्थिति में

अभियुक्त के साथ सीधे ही अभिवाक् विचार-विमर्श नहीं करेगा ।

(2) वह अभियोजक जिसके साथ ऐसा कोई अभियुक्त, जिसका कोई प्रतिनिधि नहीं है, अभिवाक् विचार-विमर्श करना चाहता है, अभियुक्त को सूचित करेगा कि :—

(क) अभियुक्त के लिए यह लाभप्रद होगा कि वह किसी परामर्शदाता द्वारा प्रतिनिधित्व कराए, और

(ख) यदि अभियुक्त परामर्शदाता रखने का व्यय वहन नहीं कर सकता तो उसे पूर्णतया विधिक सहायता योजना से यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि क्या अभियुक्त ऐसी सहायता का पात्र है,

और तत्पश्चात् अभियुक्त के साथ तब तक सीधे अभिवाक् विचार-विमर्श नहीं करना चाहिए जब तक कि अभियुक्त अभियोजक को सुनिश्चित रूप से यह सूचित नहीं कर दे कि वह/वे परामर्शदाता नहीं रखना चाहता या नहीं चाहते ।

8. (1) अभियोजक को समान परिस्थितियों वाले अभियुक्तों को अभिवाक् विचार-विमर्श करने के लिए समान अवसर प्रदान करना चाहिए ।

(2) अभियुक्त को, अभिवाक् विचार-विमर्श के दौरान, यह सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए कि समान परिस्थितियों वाले अभियुक्तों के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाता है ।

9. अभियुक्त के परामर्शदाता को अभियुक्त की ओर से ऐसे किसी अभिवाक् समझौते को पूरा नहीं करना चाहिए जिसमें अभियुक्त से ऐसे किसी अपराध का दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करना अपेक्षित है जिस अपराध के बारे में अभियुक्त स्वयं को निर्दोष मानता है ।

10. अभियोजक को निम्नलिखित प्रकार के किसी अभिवाक् समझौते का सुझाव नहीं देना चाहिए, उसे पूर्ण नहीं करना चाहिए या उसमें भाग नहीं लेना चाहिए जिसमें :

(क) अभियुक्त से किसी ऐसे अपराध का दोष स्वीकार करने की अपेक्षा की जाती है जो साक्ष्यों से प्रकट नहीं होता है;

(ख) अभियुक्त से ऐसे आरोपों को स्वीकार करने का अभिवाक् करने की अपेक्षा की जाती है जो अभियुक्त से संभावित आचरण की गंभीरता को अपर्याप्त रूप से परिरक्षित करता है, सिवाए तब जब, असाधारण परिस्थितियों में, वे न्याय प्रशासन को होने वाले फायदे, समाज की सुरक्षा, या, अभियुक्त के बचाव के रूप में न्यायोचित हैं;

(ग) अभियोजक से साक्ष्यों को रोके रखने या विरूपित करने की अपेक्षा करता है, अथवा

(घ) जो ऐसे निष्पादन की परिकल्पना करता है जो कि उससे अत्यंत भिन्न है जो, अभिवाक् समझौता न किए जाने की दशा में, अभियुक्त द्वारा उसी अपराध का दोष स्वीकार करने से परिणामित होता, सिवाए तब जब किन्हीं असाधारण परिस्थितियों में, वे न्याय प्रशासन को होने वाले फायदे, समाज की सुरक्षा, या, अभियुक्त के बचाव के रूप में न्यायोचित हैं ।

11. (1) सिवाए तब जब परिस्थितियों के कारण ऐसा करना व्यवहार्य न हो, अभियोजक को अभिवाक् समझौता करने से पूर्व अपराध के शिकार व्यक्तियों के विचार अभिप्राप्त करने चाहिए और उन्हें सावधानीपूर्वक तोलना चाहिए ।

(2) उस अभियोजक को, जो अभिवाक् समझौता सम्पन्न कराता है, यह सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए कि अपराध के शिकार व्यक्तियों को ऐसे करार का सारांश और उसके कारण बता दिए जाते हैं, सिवाए तब जब अनिवार्य कारणों से, जैसे कि अभियुक्त या किसी अन्य व्यक्ति को कोई गंभीर क्षति होने की संभावना का कारण, अन्यथा अपेक्षित हो ।

12. (1) वह अभियोजक और अभियुक्त जिन्होंने अभिवाक् समझौता सम्पन्न किया है, अभियुक्त का अभिवाक् लेखबद्ध होने के पूर्व न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित तथ्यों को प्रकट करेंगे, अर्थात् :—

(क) उस समझौते का सारांश और उसके कारण; और

(ख) क्या उसी विषय से संबंधित किसी अन्य न्यायाधीश के समक्ष कोई पूर्वतर अभिवाक् समझौता प्रकट किया गया है और यदि ऐसा है तो उस समझौते का सारांश ।

(2) इस सिफारिश के भाग (1) में वर्णित प्रकटीकरण और औचित्य तब के सिवाए खुले न्यायालय में प्रकट किया जाना चाहिए, जब, अनिवार्य कारणों से, जैसे कि अभियुक्त द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को गंभीर क्षति पहुंचाने का कारण, अन्यथा अपेक्षित है ।

13. यह सूचित किए जाने पर कि अभियोजक और अभियुक्त में अभिवाक् सौदा सम्पन्न किया है न्यायाधीश को, वहां जहां वह ऐसा करना आवश्यक समझता है, प्रश्न कर के यह सुनिश्चित करने में समर्थ होना चाहिए कि अभियुक्त अभिवाक् करार के सार और परिणामों को समझता है ।

14. कोई अभिवाक् करार या प्रतिरोध न्यायाधीश पर बाध्यकर नहीं होना चाहिए ।

15. किसी ऐसे मामले में जिसमें न्यायाधीश, यह जानकारी प्राप्त होने पर कि अभिवाक् करार हो चुका है और उसका क्या सारांश है और उसके क्या कारण हैं, यह अवधारित करता है कि अभियुक्त के मामले का निपटारा अभिवाक् समझौते में परिकल्पित रीति से नहीं किया जाना चाहिए तो न्यायाधीश अभियुक्त को इस तथ्य की जानकारी देगा ।

16. अभियुक्त के किसी दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् को स्वीकार करने से पूर्व न्यायाधीश को, जहां वह ऐसा करना आवश्यक समझता है, प्रश्नों द्वारा, यह सुनिश्चित करने में समर्थ होना चाहिए कि अभियुक्त को दोष स्वीकार करने के लिए कोई प्रलोभन तो नहीं दिया गया है जो कि अभिवाक् समझौते के भाग के रूप में प्रकट किए गए प्रलोभन से भिन्न है।

17. किसी भी ऐसे मामले में, जिसमें अभियोजक और अभियुक्त ने अभिवाक् समझौता संपन्न किया है, न्यायाधीश को अभियुक्त के दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् को स्वीकार करने से पूर्व ऐसी जांच करने के लिए, जैसी वह अपना समाधान करने के लिए आवश्यक समझता है, अभियुक्त द्वारा दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने के लिए वास्तविक आधार है ।

18. यह अवधारण करते समय कि अभियुक्त जिस अपराध से आरोपित है उससे भिन्न किसी अपराध के दोष को स्वीकार करने का अभिवाक् स्वीकार किया जाना चाहिए या नहीं, न्यायाधीश को अभियुक्त और अभियोजक के बीच हुए किसी अभिवाक् समझौते के सार और कारणों पर विचार करना चाहिए ।

19. न्यायाधीश को चाहिए कि वह अभियुक्त की दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् को नामंजूर कर दे यदि, उसके पास, अन्य बातों के साथ-साथ, यह विश्वास करने का कारण है कि—

(क) ऐसा अभिवाक् अनुचित प्रलोभन का परिणाम है;

(ख) ऐसा अभिवाक् किसी न्यायिक अधिकारी द्वारा अभियुक्त को दोष स्वीकार करने का प्रलोभन देने के लिए किए गए किसी वायदे का परिणाम है;

(ग) जहां अभियुक्त, दांडिक संहिता की वर्तमान धारा 606 (4) के अनुसरण में आरोपित अपराध का दोष स्वीकार करने का अभिवाक् नहीं कर रहा है अपितु, उसी संव्यवहार से व्युत्पन्न किसी (अन्य) अपराध का दोष स्वीकार कर रहा है वहां वह अपराध, जिसमें दोष स्वीकार करने का अभिवाक् अभियुक्त कर रहा है, साबित किए जाने योग्य आचरण की गंभीरता को अपर्याप्त रूप से परिरक्षित रखता है; या

(घ) अभियुक्त के दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् के लिए कोई तात्विक आधार नहीं है ।

20. वह अभियुक्त जिसने दोष स्वीकार करने का अभिवाक् किया है, दण्डादेश से पूर्व अभिवाक् को वापिस लेने का अथवा उस पर आधारित दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील करने का हकदार होना चाहिए यदि,—

(क) ऐसा अभिवाक् अनुचित प्रलोभन का परिणाम है;

(ख) ऐसा अभिवाक् न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त को दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने के लिए अथवा किसी प्रलोभन का परिणाम है;

(ग) ऐसा अभिवाक्, अभियुक्त और अभियोजक के बीच किए गए अभिवाक् करार के सार या परिणामों के बारे में एक विशिष्ट आशंका का परिणाम है; अथवा

(घ) यदि अभियोजक ने अभियुक्त के साथ संपन्न किए गए अभिवाक् समझौते का उल्लंघन किया है ।

21. जहां अभियुक्त ने किसी अपराध को स्वीकार करने का अभिवाक् किया है और उसे सिद्धदोष ठहराए जाने पर ऐसा दंड प्राप्त किया है जो उन परिस्थितियों में दांडिक संहिता के अधीन अनुज्ञात है तथा जो कि अभिवाक् समझौते के अनुरूप है या उसमें परिकल्पित सीमाओं के भीतर है तो अभियोजक को अभियुक्त द्वारा प्राप्त किए गए दंडादेश के विरुद्ध तब तक अपील करने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि यह नहीं दर्शाया जाए कि—

(क) अभियोजक को, अभिवाक् विचार-विमर्श के दौरान, अभियुक्त ने किन्हीं तात्विक विशिष्टियों के संबंध में जानबूझकर गुमराह किया था; या

(ख) न्यायालय को, दंडादेश देते समय किन्हीं तात्विक तथ्यों के संबंध में जानबूझकर गुमराह किया गया था ।

22. किसी ऐसे मामले में जिसमें अभियुक्त ने, उसके और अभियोजक के बीच संपन्न हुए अभिवाक् समझौते के अनुसार, किसी अपराध का दोष स्वीकार करने का अभिवाक् किया है, तत्पश्चात् ऐसे समझौते के उल्लंघन में अभियुक्त के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही तब तक प्रतिषिद्ध होनी चाहिए जब तक कि अभियुक्त को—

(क) अभिवाक् विचार-विमर्श के दौरान, अभियुक्त ने किन्हीं तात्विक विशिष्टियों के बारे में जान-बूझकर गुमराह न किया हो; या

(ख) अभिवाक् समझौता संपन्न करने के लिए उस आचरण को प्रतिषिद्ध न किया हो जिसके परिणामस्वरूप न्याय में बाधा पड़ती है ।

23. दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् का, जिसे बाद में वापिस ले लिया गया हो, अथवा किसी अपराध का दोष स्वीकार करने का अभिवाक करने का प्रस्ताव करने का, अथवा ऐसे अभिवाक या प्रस्ताव के संबंध में किसी वक्तव्य का साक्ष्य किसी भी कार्यवाही में अपराध या विश्वसनीयता के प्रश्न पर अग्रह्य होना चाहिए ।

उपाबंध "ग"

संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय के दो प्रमुख मामलों के सुसंगत अंशों का यथावत उद्धरण

(अध्याय 6, पैरा 6.19 और 6.21 देखिए)

संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने **ब्राडी बनाम संयुक्त राज्य** के मामले में इस विषय की गहन परीक्षा की और यह निष्कर्ष निकाला कि यदि कोई व्यक्ति न्यायालय या जूरी द्वारा विचारण के संवैधानिक अधिकार का त्याग करके दोष स्वीकार करने का स्वेच्छापूर्वक अभिवाक् करता है तो वह अविधिमान्य नहीं है यदि ऐसा परित्याग स्वेच्छापूर्वक है और सुसंगत परिस्थितियों तथा संभावित परिणामों की पर्याप्त जागरुकता के साथ किया गया है। न्यायाधिपति व्हाइट ने, जिन्होंने न्यायालय की राय सुनाई थी, निम्नलिखित मत प्रकट किया था :

> "विचारण के बिना निर्णय या दोषसिद्धि अभियुक्त द्वारा जूरी या न्यायाधीश के समक्ष विचारण के अपने अधिकार का सहमतिपूर्वक परित्याग है। संवैधानिक अधिकारों का परित्याग न केवल स्वेच्छापूर्वक होना चाहिए अपितु वह ऐसा ज्ञानपूर्ण और विवेकपूर्ण कार्य होना चाहिए जो कि सुसंगत परिस्थितियों और संभावित परिणामों की पर्याप्त जानकारी से किया गया हो। इनमें से किसी भी कारण से दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् को अविधिमान्य नहीं ठहराया जा सकता।"

न्यायाधिपति व्हाइट ने आगे यह मत भी व्यक्त किया (पृष्ठ 757) :

> "राज्य दांडिक प्रक्रिया में प्रत्येक महत्वपूर्ण प्रक्रम पर दोष को स्वीकार करने के अभिवाक् को कुछ सीमा तक प्रोत्साहित करता है। कुछ व्यक्तियों के लिए राज्य की विधि का उल्लंघन मात्र ऐसा पर्याप्त कारण हो सकता है जिसके कारण वे समर्पण कर रहे हों और दोष स्वीकार कर रहे हों। कुछ लोगों के लिए आशंका और आरोप, जो दोनों ही सरकार के धमकीपूर्ण कृत्य हैं, उन्हें अपना दोष स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते हैं। ऐसे भी कुछ अन्य मामले हो सकते हैं जिनमें दंडादेश से पूर्व संग्रह किया गया साक्ष्य अभियुक्त को और उसके परामर्शदाता को आश्वस्त कर दे कि विचारण कष्ट और धन दोनों की दृष्टि से अभियुक्त और उसके परिवार के लिए लाभप्रद नहीं होगा। इस बात के होते हुए भी, कि राज्य ऐसे अभिवाकों को प्रेरित करने के कुछ कारणों के लिए उत्तरदायी है, दोष स्वीकारोक्ति के ऐसे अभिवाक् विधिमान्य हैं, ऐसे अभिवाकों को अभियुक्त के इस विनिश्चय की तुलना में अधिक अनुचित रूप से बाध्यकर नहीं माना जा सकता कि राज्य की ओर से विचारण के समय प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की समाप्ति पर वह एक ऐसा अभिवाक् करे अथवा एक निश्चित दंडादेश का सामना करे।"

2. पृष्ठ 758 और 759 पर न्यायाधिपति व्हाइट के निम्नलिखित विचार ज्ञानवर्धक हैं :

> "जिस प्रश्न पर हम विचार कर रहे हैं वह दंड विधि और उसके प्रशासन का एक अंतरिम भाग है क्योंकि दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् संवैधानिक रूप से प्रतिषिद्ध नहीं हैं क्योंकि दांडिक विधि विलक्षण रूप से न्यायाधीश या जूरी को प्रत्येक मामले में दंडादेश निश्चित करने का अधिकार देती है और क्योंकि राज्य तथा प्रतिपक्ष दोनों को ही प्रायः विधि द्वारा प्राधिकृत अधिकतम दंड की संभावना को दूर रखना लाभप्रद प्रतीत होता है। उस प्रतिपक्षी के लिए, जिसे रिहाई की बहुत कम संभावना दिखाई पड़ती है, दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करने और संभावित दण्ड को सीमित रखने का लाभ स्पष्ट है। जनसाधारण के समक्ष उस अपराध की जानकारी की संभावना कम हो जाती है, सुधार की प्रक्रिया तुरंत प्रारंभ हो जाती है, और विचारण का जो व्यवहारिक भार है वह दूर हो जाता है। राज्य को भी इससे लाभ मिलता है। दोष को स्वीकार करने के पश्चात् तुरन्त अधिरोपित किया गया दंड, दंड के उद्देश्य को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से प्राप्त करता है, और विचारण न होने से न्याय अधिकारियों और अभियोजन अधिकारियों के सीमित साधनों का उपयोग उन मामलों के लिए सुरक्षित रह सकता है जिनमें प्रतिपक्ष के दोष और कोई सारपूर्ण प्रश्न हो अथवा जिनमें इस बात का पर्याप्त संदेह हो कि राज्य सबूत का भार वहन कर सकेगा या नहीं। अतः, प्राप्त होने वाले इस फायदे के कारण ही संभवतः वह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान में दांडिक दोषसिद्धियों में से तीन-चौथाई दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् पर आधारित हैं; निःसंदेह उनमें से अनेक अभिवाक् इस आशा या आश्वासन का परिणाम होते हैं कि उस दंड से कम दंड अधिरोपित किया जाएगा जो कि न्यायाधीश या जूरी द्वारा विचारण के पश्चात् दोषी होने के आदेश होने की स्थिति में अधिरोपित किया जाता।"

3. पृष्ठ 761-762 पर दिए गए निम्नलिखित विचार भी सुसंगत हैं :

> "इसका यह अर्थ नहीं है कि दोष स्वीकारोक्ति से परिणामित दोषसिद्धियों के कारण निर्दोष व्यक्तियों को कोई संकट नहीं होता या इस देश में इस समय दोष स्वीकार कराने के लिए अपनाए जाने वाले उपाय सभी दृष्टि से विधिमान्य हैं। दोषसिद्धियों की यह पद्धति न्यायालय या जूरी द्वारा पूर्ण विचारण की अपेक्षा अधिक त्रुटिविहीन नहीं है। तदनुसार, हम आधारविहीन परिणामों के मामलों में बहुत सावधानी बरतते हैं और हमें ऐसा करते रहना चाहिए चाहे दोषसिद्धि ऐसे अभिवाक् के परिणामस्वरूप हो अथवा विचारण के परिणामस्वरूप। हमें इस मामले में गंभीर संदेह होता यदि उदारता के वचन के परिणामस्वरूप दोषसिद्धियों के अभिवाक् के कारण इस बात की संभावना अत्यधिक बढ़ जाती कि प्रति वर्ष प्रतिपक्षीगण, सक्षम परामर्शदाताओं की सलाह पर, झूठे ही स्वयं को निंदित करते। किन्तु हमारी राय इसके विपरीत है और वह इन प्रत्याशाओं पर आधारित है कि न्यायालय अपना यह समाधान करेंगे कि दोष स्वीकारोक्ति के अभिवाक् सक्षम प्रतिपक्षियों द्वारा परामर्शदाताओं की पर्याप्त सलाह पर स्वेच्छापूर्वक और विवेकसहित किए जाते हैं और प्रतिपक्षियों द्वारा वे अपराध किए गए हैं जिनके लिए उन्हें आरोपित किया गया है, सही होने और विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लगाने का कोई कारण नहीं है।"

6.21. दूसरे प्रमुख मामले में, अर्थात्, सेंटोबेलो के मामले में, संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने एक बार पुनः अभिवाक्-सौदे की संवैधानिक विधिमान्यता का समर्थन किया है। मुख्य न्यायाधिपति बर्गर ने, जिन्होंने न्यायालय की राय सुनाई थी, निम्नलिखित मत प्रकट किया है (पृष्ठ 260, 262) :

> "-------अभियोजक और अभियुक्त के बीच समझौते द्वारा दाण्डिक आरोपों का निष्पादन, जिसे हम यदा कदा 'अभिवाक्-सौदे' का नाम देते हैं, न्याय प्रशासन का अनिवार्य अंग है। यदि इसका उपयोग उचित रूप से किया जाए तो इसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यदि प्रत्येक दांडिक आरोप के लिए पूरा विचारण किया जाए तो राज्य और संघीय सरकार को न्यायाधीशों की संख्या और न्यायालय की सुविधाओं को कई गुणा बढ़ाने की आवश्यकता होगी।"

> "अभिवाक् विचार-विमर्श के पश्चात् आरोपों का निष्पादन न केवल प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग है, अपितु अनेक कारणों से अत्यधिक वांछनीय भी है। इसके परिणामस्वरूप अधिकांश दांडिक मामलों का शीघ्र और अधिकांशतः अंतिम रूप से निपटारा हो जाता है; इसके कारण उन लोगों के लिए, जिन्हें विचारण के दौरान रिहा किए जाने से इन्कार किया जाता है, विचारपूर्व बंदी बने रहने के दौरान अनिवार्य रूप से समय व्यर्थ करना पड़ता है, उसके हानिकारक प्रभाव से बचा जा सकता है; यह जनसाधारण को उन अभियुक्तों से परित्राण प्रदान करता है जो विचारपूर्व निर्मुक्ति के दौरान दांडिक आचरण में लिप्त रह सकते हैं; और आरोप लगाए जाने और मामले का निपटारा होने के बीच की अवधि बहुत कम हो जाने से दोषी व्यक्ति के पुनःविस्थापित किए जाने की संभावनाएं, जब कि वे अंततः कारागार में डाल दिए जाते हैं, बढ़ जाती हैं।"

> "तथापि, इन सभी तर्कों के पीछे यह पूर्व कल्पना है कि अभियुक्त और अभियोजक के बीच करार उचित ढंग से संपन्न हुआ होगा। यह बात अब स्पष्ट है कि, उदाहरण के लिए, दोष स्वीकार करने वाले अभियुक्त ने एक अधिकार के परित्याग करने के बारे में परामर्श प्राप्त किया होगा। **मूरे बनाम मिशिगन**, 355, यू एस 155 (1957)। फेडरल रूल क्रिमिनल प्रोसीजर 11, जो कि संघीय न्यायालयों में अभिवाकों को शासित करता है, अब इस बात को स्पष्ट करता है कि दंडादेश देने वाले न्यायाधीश को अभिवाकों के दंडादेशपूर्ण आधारों को लेखबद्ध करना चाहिए, उदाहरण के लिए, अभियुक्त से उस आचरण के बारे में विवरण लेकर जिसका परिणाम वह आरोप है-------"।

5. न्या. डगलैस ने निर्णय का समर्थन करते हुए यह मत प्रकट किया कि यद्यपि अभिवाक्-सौदा प्रत्यक्षतः असंवैधानिक नहीं है किन्तु दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् उन धमकियों के कारण शून्यकरणीय हो जाता है जो कि दी गई हों और जिनके परिणामस्वरूप अभियुक्त ने दोष स्वीकारोक्ति का अभिवाक् किया हो। विद्वान न्यायाधीश ने यह मत भी प्रकट किया :

> "**सभी परिस्थितियों के प्रकाश में वायदों की वैधता** का अपीली पुनरीक्षण करने में सहायता प्रदान करने के लिए, **सभी विचारण न्यायालयों से अब यह अपेक्षित है कि वे उन प्रतिपक्षियों से, जो दोष स्वीकार करने का अभिवाक् करते हैं, प्रश्न, करें ताकि इन मूल अधिकारों के परित्याग की बात अभिलेख पर सकारात्मक रूप से प्रकट हो सके।**"

प्र. भा. स. मु. फ.--422 लॉ एण्ड जस्टिस/93

PLD.92. CXLII (H)
200—1993 (DSK-IV)

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित
एवं प्रकाशन नियंत्रण, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1994
PRINTED BY THE MANAGER, GOVERNMENT OF INDIA PRESS, FARIDABAD,
AND PUBLISHED BY THE CONTROLLER OF PUBLICATIONS, DELHI, 1994

भारत का विधि आयोग

छोटे निक्षेपकर्ताओं के शोषण से संरक्षण के लिए विधायी रक्षोपाय

पर

143वीं रिपोर्ट

1991